

राम वन गमन







कृपया यह ग्रन्थ नीचे निर्देशित तिथि के पूर्व अथवा उक्त तिथि तक वापस कर दें। विलम्ब से लौटाने पर प्रतिदिन दस पैसे विलम्ब शुल्क देना होगा।

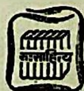


तुलसी-राम-कथा : भाग २

राम वनगमन

विश्वम्भरसहाय 'प्रेमी'

तुलसीकृत रामचरितमानस के आधार पर भगवान राम की सरस, रोचक एवं प्रेरक कथा



१९७५

सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन

प्रथम बार : १९७५

प्रकाशक
यशपाल जैन
मंत्री, सस्ता साहित्य मण्डल,
नई दिल्ली

मूल्य
रु० ५.००

मुद्रक
उद्योगशाला प्रेस,
किंग्सवे, दिल्ली-९

प्रकाशकीय

हमारे देश में शायद ही कोई ऐसा व्यक्ति होगा, जिसने राम का नाम न सुना हो और रामकथा से परिचित न हो। अपने देश में ही क्यों संसार के अनेक देशों में राम-भक्ति की धारा प्रभावित है। दक्षिण-पूर्व एशिया में तो समूचा लोकजीवन राम की भक्ति से ओतप्रोत है। सच बात यह है कि राम के नाम में और उनके चरित्र में कुछ ऐसा जादू है कि उनकी कथा को एक वार पढ़ लेने से तृप्ति नहीं होती, उसे बार-बार पढ़ने को जी चाहता है।

इस पुस्तकमाला के चार भागों में हमने राम के जीवन के प्रमुख प्रसंगों को लेकर सारी कथा इस प्रकार दी है कि सामान्य पढ़े-लिखे पाठक भी इसे आसानी से समझ सकते हैं। बीच-बीच में चुनी हुई चौपाइयां तथा दोहे भी दे दिये हैं, जिससे ये पुस्तकें और भी सरस तथा रोचक बन गई हैं।

इस पुस्तक में राम के राज-तिलक का विचार, मंथरा की कुटिलता, कैकेयी का दुराग्रह, पुत्र की कर्त्तव्य-निष्ठा, माता-पिता तथा पुरवासियों की वेदना, सीता और लक्ष्मण सहित राम का वन-गमन, निषाद-मिलन, ऋषि-मुनियों के आश्रम में, दशरथ का निधन, चित्रकूट में वास, भरत-मिलाप, राम का अटल संकल्प आदि-आदि घटनाओं को बड़े ही भावपूर्ण ढंग से प्रस्तुत किया गया है। पढ़ते-पढ़ते पाठक विभोर हो उठता है। चुनी हुई चौपाइयाँ, दोहों और चित्रों से तो वह और भी रस में डूब जाता है।

ऐसी पुस्तकें प्रत्येक परिवार में होनी चाहिए, जिससे सारे सदस्य उन्हें पढ़कर लाभान्वित हो सकें।

हम आशा करते हैं कि इन पुस्तकों को घर-घर पहुँचाने में पाठक हमारी सहायता करेंगे।

—मंत्री

जबतक हमारी भारत भूमि में गंगा और कावेरी प्रवहमान हैं तबतक सीता-राम की कथा भी आबाल, स्त्री-पुरुष, सबमें प्रचलित रहेगी; माता की तरह हमारी जनता की रक्षा करती रहेगी।

—चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य

अनुक्रम

राम-वनगमन



राम-वनगमन

: १ :

राज-तिलक का विचार

रामचंद्रजी जब विवाह करके अयोध्या लौट आये तो चारों ओर आनन्द-ही-आनन्द छा गया। सभी पुरजन बहुत प्रसन्न हुए। मातासहित पिता दशरथ भी बहुत प्रसन्न हुए। अब तो सबके मन में एक यही अभिलाषा थी कि राजा अपने जीतेजी राम-चंद्रजीको युवराज-पद दे दें। महाराज दशरथ राज-दरबार में बैठे हुए रामचंद्रजी के यश की नित-नई कहानियां सुनते और मन-ही-मन प्रमुदित होते थे।

एक दिन उन्होंने जब दर्पण में अपना मुंह देखा तो देखा कि कानों के पास कुछ बाल सफेद हो गये हैं, मानो बुढ़ापा उन्हें उपदेश दे रहा था हे राजन्, रामचंद्रजी को युवराज-पद देकर अपने जीवन का लाभ क्यों नहीं लेते !"

श्रवन समीप भए सित केसा।
मनहुं जरठपनु अस उपदेसा॥
नृप जुबराजु राम कहुं देहू।
जीवन जनम लाहु किन लेहू॥

यह विचार मन में आते ही महाराज गुरु वसिष्ठ के पास

पहुंचे और निवेदन किया, "गुरुदेव, अब मैं रामचंद्रजी को युवराज बनाना चाहता हूं। आपकी आज्ञा हो तो राजसभा में इसकी चर्चा करूं।"

गुरु वसिष्ठ बोले, "राजन्, देर करने की आवश्यकता नहीं है। शीघ्र तैयारी कीजिये। जिस दिन रामचंद्रजी युवराज हों, उसी दिन को शुभ और मंगलमय दिन समझिये।"

महाराज प्रसन्न होकर महलों में लौटे और उन्होंने मंत्रियों को बुलाया। मंत्री और दूसरे पंच लोग यह समाचार सुनकर बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने राजा से कहा, "राजन्, इस मंगल काम को करने में अब देर न कीजिये। यह विचार बहुत अच्छा है।"

मंत्रियों की ऐसी राय सुनकर राजा का आनंद और भी बढ़ गया और उन्होंने गुरु वसिष्ठ की आज्ञानुसार राजतिलक की तैयारी आरंभ कर दी। संपूर्ण तीर्थों का जल, ओषधि, फल, पत्र-पुष्प आदि अनेक मांगलिक वस्तुएं मंगाने का प्रबन्ध किया गया। मृग-चर्म, अनेक प्रकार के ऊनी और रेशमी वस्त्र और मणियां, ये सब मंगाई जाने लगीं। नगर को खूब सजाया गया। गणेश और कुल-देवता की पूजा की जाने लगी। मनोहर चौक सुंदर मणियों से पुरवाये जाने लगे। अवध-भर में बड़ी धूमधाम के बधावे बज उठे। स्वयं रामचंद्रजी और सीताजी के शरीर में शुभ लक्षण प्रकट होने लगे। जब यह समाचार माताओं को मिला तो वे भी बहुत प्रसन्न हुईं। मंगल-कलश सजाने लगीं। उन्होंने ग्राम-देवियों की पूजा की और रामचंद्रजी के कल्याण के लिए वर मांगा।

तभी गुरु वसिष्ठ रामचंद्रजी को समय के अनुसार उपदेश देने के लिए उनके महलों में पहुंचे। सीतासहित रामचंद्रजी ने

इस आगमन पर उनका बड़ा उपकार माना। वह अपने कर्तव्य को समझते थे, लेकिन उनके मन में एक दुःख भी था। वह जानते थे कि हम सब भाई एक साथ जन्मे, खेले-कूदे, बड़े हुए, यज्ञोपवीत और विवाह सब एक साथ ही हुए, लेकिन अब यह कैसी अनुचित बात हो रही है कि राज्याभिषेक अकेले मेरा ही हो रहा है।

जनमे एक संग सब भाई।
भोजन सयन केलि लरिकाई॥
करनबेध उपबीत बिआहा।
संग संग सब भये उछाहा॥
बिमल बंस यहु अनुचित एकू।
बंधु बिहाइ बड़ेहि अभिषेकू॥
प्रभु सप्रेम पछितानी सुहाई।
हरउ भगत मन कै कुटिलाई॥

रामचंद्रजी के मन में ऐसा खेद होना स्वाभाविक था। लेकिन उनके दूसरे भाई उनके युवराज होने से बहुत प्रसन्न थे। अयोध्यापुरी आनन्द में मग्न होकर भरत के आने की राह देख रही थी। चारों ओर आनन्द-ही-आनन्द छा रहा था।

: २ :

मंथरा की कुटिलता

लेकिन इस आनन्द के बीच वहां एक ऐसा व्यक्ति भी था, जिसका हृदय यह आनंद देखकर जल रहा था। वह थी रानी

कैकेयी की मुंहलगी दासी कुबड़ी मंथरा । जब उसने यह सुना कि रामचंद्रजी का राज-तिलक हो रहा है तो वह और भी जल उठी । वह तुरंत भरतजी की माता कैकेयी के पास पहुंची और दिखावे के लिए आंसू बहाने लगी ।

रानी ने हँसकर कहा, "तू बड़े गाल बजाया करती है । मालूम होता है, आज लक्ष्मण ने तुझे कुछ सीख दी है ।" इसपर भी वह दुष्टा कुछ नहीं बोली । ऐसे सांस छोड़ती रही, जैसे काली नागिन फुफकार रही हो ।

हँसि कह रानि गालु बड़ तोरें ।
दीन्ह लखन सिख अस मन मोरें ।।
तबहुं न बोल चेरि बड़ि पापिनि ।
छाड़इ स्वास कारि जनु सांपिनि ।।

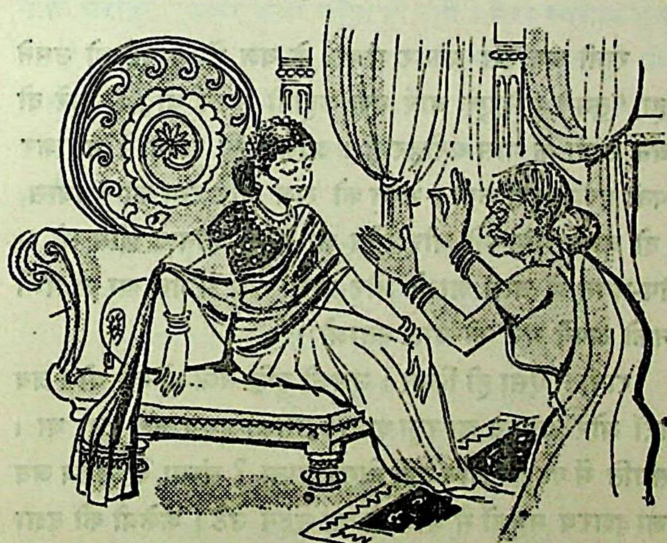
यह देखकर रानी का मन भी शंका से भर उठा और वह महाराज और अपने पुत्रों का कुशल-समाचार पूछने लगीं । इसपर मंथरा ने कहा, 'कुशल तो कौशल्या की है । नगर की शोभा देखो न । तुम्हारे पुत्र ननिहाल गये हुए हैं और रामचंद्रजी को युवराज बनाया जा रहा है ।"

यह सुनकर रानी बहुत क्रुद्ध हुई और मंथरा को धमकाने लगी—"काने, लंगड़े और कुबड़े बड़े कुटिल होते हैं; उनमें भी स्त्री और फिर दासी ! अरे, यदि सचमुच कल ही राम का राजतिलक है तो मांग तू क्या मांगती है । वही दूंगी । राम तो मुझे विशेष रूप से प्यारे हैं । मैं तो भगवान से यही चाहती हूं कि मुझे फिर से जन्म दे तो मेरे राम-जैसा पुत्र उत्पन्न हो ।"

लेकिन मंथरा पर इन बातों का कोई असर न हुआ । वह

और भी जली-कटी बातें सुनाने लगी—"तुम राजा को अपने वश में समझती हो, लेकिन राम की मां बड़ी चालाक है। यह सब चाल उसीकी है। नहीं तो भला भरत को ननिहाल भेजकर राम को युवराज क्यों बनाया जाता ? राजा तुमको बहुत चाहते हैं, यह बात कौशल्या नहीं सह सकती।"

इसी प्रकार जब उसने सौतिया डाह की बहुत-सी बातें कहीं तो कैकेयी को भी विश्वास होने लगा। आखिर वह नारी ही तो थी ! वह गई। बोलीं, "मंथरा, तेरी बात सत्य है। मेरी दाहिनी आंख रोज फड़का करती है। मैं रात-दिन बुरे सपने देखती हूं,



मंथरा ने कैकेयी के खूब कान भरे

किंतु किसीसे कहती नहीं हूं। मैं भले ही नैहर में रहकर जीवन बिता दूं, पर जीते-जी सौत की चाकरी नहीं करूंगी। भाग्य

जिनको शत्रु के वश में रखकर जिलाता है, उनके लिए मर जाना ही अच्छा है।"

नैहर जनमु भरब बरु जाई।
जिअत न करबि सवति सेवकाई।।
अरि बस देउ जिआवत जाही।
मरनु नीक तेहि जीवन चाही।।

: २ :

कैकेयी का दुराग्रह

रानी जब इस प्रकार मंथरा के वश में आगई तो उसने कहा, "तुमने मुझे एक बार एक कहानी सुनाई थी। तुम्हारे दो वचन राजा के पास धरोहर हैं। आज उन्हें राजा से मांगकर अपनी इच्छा पूरी करो। भरत को राज और राम को वनवास, ये दो वचन मांग लो और सौत का सारा आनन्द छीन लो। कोप-भवन में चली जाओ और राजा जब सौगंध खा लें तभी उनको अपने मन की बात बताओ।"

रानी ने ऐसा ही किया। उसकी बुद्धि नष्ट हो गई थी। जब चारों ओर आनन्द छा रहा था तब उसका हृदय जल रहा था। कुसंगति में पड़कर कौन नहीं बिगड़ जाता? संध्या के समय जब राजा दशरथ महलों में आये तो वह सहम उठे। कैकेयी की दशा देखकर उन्हें बहुत दुःख हुआ। पूछने लगे, "हे प्रिये, तुम किसलिए रूठी हो? तुम मुझे अपने क्रोध का कारण तो बताओ, किसने तुम्हारा बुरा किया है? किसके दो सिर हैं! किसकी मौत आई

है ? कहो, किस कंगाल को राजा बना दूं या किस राजा को देश से निकाल दूं ! तुम्हारा शत्रु देवता ही क्यों न हो, मैं उसे भी मार सकता हूं, फिर नर-नारी की तो बिसात क्या है ?"

इस प्रकार राजा के बार-बार कहने पर और सौगंध खाने पर मंदबुद्धि कैकेयी उठी और बोली, "आप बार-बार 'मांग-मांग' तो कहा करते हैं, लेकिन लेते-देते कुछ नहीं। आपने दो वरदान देने को कहा था। उनके मिलने में भी संदेह है।"

राजा ने हँसकर कहा, "मैं तुम्हारा मतलब समझ गया। मान करना तुम्हें बड़ा अच्छा लगता है। तुमने उन वरों को मेरे पास धरोहर रखकर कभी मांगा ही नहीं। मेरा स्वभाव भूलने का है, इसलिए मुझे भी याद नहीं रहा। तुम मुझे झूठ-मूठ दोष न दो। चाहे दो के बदले चार मांग लो, रघुकुल की सदा से यही रीत चली आ रही है कि प्राण भले ही चले जायं, लेकिन वचन कभी नहीं जाता।"

मागु मागु पै कहहु पिय कबहुं न देहु न लेहु।
देन कहेहु बरदान दुइ तेउ पावत संदेहु॥
जानेउं मरम राउ हँसि कहई।
तुम्हहि कोहाब परम प्रिय अहई॥
थाती राखी न मांगिहु काऊ।
बिसरि गयउ मोहि भोर सुभाऊ॥
झूठेहुं हमहि दोषु जनि देहू।
दुइ के चारि मांगि मकु लेहू॥
रघुकुल रीति सदा चलि आई।
प्रान जाहुं बरु बचन न जाई॥

इस प्रकार बात पक्की करके वह दुर्बुद्धि कैकेयी हँसकर बोली, "महाराज, सुनिये, मेरे मन को प्रसन्न करनेवाले दो वर आप मुझे दीजिये। पहला, भरत को राजतिलक हो और दूसरा, यह कि तपस्वियों का भेस धरकर राम चौदह वर्ष तक वन में निवास करें।"

कैकेयी के वचन सुनकर राजा एकाएक सहम गये और कुछ कह न सके, मानो बाज बटेर पर झपटा हो, मानो ताड़ के पेड़ पर बिजली गिरी हो। उनका रंग उड़ गया। उन्होंने आंखें बंद कर



आपने दो वरदान देने को कहा था

लीं और माथे पर हाथ रखकर सोचने लगे—'हाय, मेरा मनोरथ-रूपी कल्पवृक्ष फल-फूल रहा था, लेकिन इस कैकेयी-रूपी हथिनी ने उसे जड़समेत उखाड़ डाला। स्त्री का विश्वास करके मैं मर गया।"

राजा को इस प्रकार सोच में देखकर कैकेयी और भी क्रुद्ध हो उठी। बोली, "आप तो रघुवंश में सत्य प्रतिज्ञावाले प्रसिद्ध हैं। या तो 'हां' कीजिये, नहीं तो 'नहीं' कर दीजिये। अभी तो बड़ी-बड़ी बातें कर रहे थे। शायद मन में सोचा होगा कि मैं चबैना मांगनेवाली हूं। आप वर नहीं देते, न दीजिये, सत्य को छोड़ दीजिये और जगत में अपयश के भागी बनिये।"

ऐसे कुटिल वचन बोलती हुई कैकेयी ऐसी लग रही थी, मानो क्रोधरूपी तलवार म्यान से बाहर निकल आई हो। महाराज ने फिर भी बड़े प्यार से उसे समझाया, "मैं शंकर को साक्षी करके कहता हूं कि राम और भरत दोनों मेरी दो आंखें हैं। दोनों मेरे लिए समान हैं। राम को राज्य का लोभ नहीं है। कौशल्या ने भी मुझसे कभी कुछ नहीं कहा। मैं तुमसे पूछना भूल गया, यह मेरा दोष है, लेकिन अब तुम क्रोध छोड़ दो। मैं भरत को युवराज बना दूंगा, पर दूसरा वर तुमने बड़ी अड़चन का मांगा है। तुम तो राम को कौशल्या से भी ज्यादा प्यार करती हो। फिर तुम उसे वन क्यों भेज रही हो ? मैं राम के बिना नहीं जी सकूंगा।"

लेकिन इस अनुनय-विनय का कैकेयी पर कोई असर नहीं हुआ। उसने कहा, "मैंने जो मांगा है सो दीजिये, नहीं तो मना कर दीजिये। राम साधु है, राम की माता भी भली है। मैंने इस बात को पहचान लिया है। कौशल्या ने जैसी मेरी भलाई चाही

है, मैं भी उसे वैसा ही फल दूंगी। सवेरा होते ही मुनियों का वेश धारण कर यदि रामचंद्र वन को नहीं चले जाते तो, हे राजन्, यह निश्चित समझिये कि मैं प्राण दे दूंगी और जगत में आपका अपयश होगा।"

राम साधु तुम्ह साधु सयाने।
राममातु भलि सब पहिचाने॥
जस कौसिलाँ मोर भल ताका।
तस फलु उन्हहि देउं करि साका॥
होत प्रातु मुनिवेष धरि जौं न रामु वन जाहिं।
मोर मरन राउर अजसु नृप समुझिअ मन माहिं॥

कैकेयी की ऐसी कड़वी बात सुनकर महाराज दशरथ बहुत दुखी हुए। रातभर उनको नींद नहीं आई। 'राम-राम' रटते रहे। सवेरा हुआ। सारे नगर में राजतिलक की तैयारी हो रही थी। आनन्द छा रहा था। लेकिन महाराज दशरथ कैकेयी के कोप-भवन में पड़े हुए, "हे राम! हे राम!" चिल्ला रहे थे और कैकेयी उनको मर्मभेदी वचन सुनाकर और भी व्याकुल कर रही थी। महाराज ने कैकेयी से बार-बार प्रार्थना की। कहा, "राम की तो सारी दुनिया प्रशंसा कर रही है और करेगी, लेकिन तुम्हारा कलंक और मेरा पछतावा कभी नहीं मिटेगा। तुम मेरे सामने से चली जाओ। जीवनभर अब तुम मुझसे मत बोलना। अभागिन, तुम तांत के लिए गाय को मार रही हो। याद रखना, अंत में तुम्हें पछताना होगा।"

लेकिन कैकेयी पर इन बातों का कोई असर नहीं हुआ। सवेरा होने पर वीणा, बांसुरी और शंख की ध्वनि होने लगी।

राज-द्वार पर मंत्रियों और सेवकों की भीड़ लग गई। राजा को जागा हुआ न देखकर सुमंत्र अन्दर आये और जब उन्होंने राजा की वह दशा देखी तो डर के मारे कुछ पूछ न सके। कैकेयी ने ही कहा, "तुम जाकर राम को बुला लाओ।" वह तुरन्त राम को बुलाने चले। मार्ग में लोग तरह-तरह के प्रश्न पूछते थे और वह उनको किसी तरह समझा-बुझाकर आगे बढ़ जाते थे।

: ४ :

पुत्र की कर्त्तव्य-निष्ठा

राम ने आकर जब राजा की यह दशा देखी तो वह मां से पूछने लगे, "पिताजी की यह अवस्था कैसे हुई है ? उनका दुःख कैसे दूर हो सकता है ?" इसपर कैकेयी ने अपने दो वर-दान मांगने की बात कह सुनाई।

सुनकर राम तनिक भी चिंतित न हुए। मुस्कराकर सुंदर वचन बोले, "माता, वह पुत्र भाग्यशाली है जो माता-पिता के वचनों का पालन करता है। हे जननी, माता-पिता को संतुष्ट करनेवाले पुत्र संसार में बड़ी कठिनता से प्राप्त होते हैं। वन में रहते हुए मैं मुनियों से मिलूंगा, इससे मेरा कल्याण होगा। उसपर पिताजी की और आपकी ऐसी इच्छा भी है। मेरे प्राणों से प्यारा भरत राज्य करेगा। मुझे तो ऐसा लगता है, मानों भगवान मुझपर बहुत प्रसन्न हैं। ऐसे समय मैं वन न जाऊं तो मूर्खों में मुझे सबसे पहला मानना चाहिए।"

सुनु जननी सोइ सुतु बड़भागी ।
जो पितु मातु बचन अनुरागी ।।
तनय मातु पितु तोषनिहारा ।
दुर्लभ जननि सकल संसारा ।।

मुनिगन मिलनु विसेषि बन, सबहि भांति हित मोर ।
तेहि महं पितु आयसु बहुरि सम्मत जननी तोर ।।

भरतु प्रानप्रिय पावहि राजू ।
बिधि सब बिधि मोहि सनमुख आजू ।।
जौं न जाउं बन ऐसेहु काजा ।
प्रथम गनिअ मोहि मूढ़समाजा ।।

कैकेयी राम की यह बात सुनकर बहुत प्रसन्न हुई और उनकी प्रशंसा करने लगी । इतने में राजा की मूर्च्छा दूर हो गई । उन्होंने राम को अपने चरणों में प्रणाम करते देखा तो स्नेह से विकल होकर हृदय से लगा लिया । आंखों से आंसुओं की धारा बहने लगी । बार-बार देवताओं से विनती करने लगे कि किसी तरह राम वन न जायं । उनकी यह अवस्था देखकर राम बोले, "पिताजी, इस मंगल के समय स्नेह के वश होकर किसी प्रकार का सोच न कीजिये, प्रसन्न होकर मुझे आज्ञा दीजिये । आपकी आज्ञा का पालन करके और अपने जन्म का फल पाकर मैं जल्दी ही लौट आऊंगा । मैं माता से विदा मांगकर अभी आता हूं फिर आपको प्रणाम करके वन चला जाऊंगा।"

आयसु पालि जनम फलु पाई ।
ऐहउं बेगिहिं होउ रजाई ।।

बिदा मातु सन आवउं मागी।
चलिहउं बनहि बहुरि पग लागी॥

इतना कहकर रामचंद्रजी वहां से चले गये। राजा कुछ नहीं बोल सके। नगर भर में यह समाचार फैल गया। स्त्री-पुरुषों के दिल ऐसे मुरझा उठे जैसे वन में आग लगने से वृक्ष मुरझा जाते हैं। वे नारी के स्वभाव की निंदा करने लगे। भला, इस दुर्बुद्धि कैकेयी को इस समय क्या सूझी ? कुछ लोग तो इस बात पर विश्वास करने को भी तैयार नहीं होते थे। कुछ विधाता को दोष दे रहे थे। भला कहीं राम वन के योग्य हैं ! भरत तो राम को इतना प्यार करते हैं कि वह कभी राज्य नहीं करेंगे ! कैकेयी की सखियां उसे तरह-तरह की सीख देने लगीं। बार-बार उससे प्रार्थना करने लगीं कि वह अपना वचन लौटा ले, लेकिन कैकेयी तो किसीकी बात को कान ही नहीं देती थी।

उधर राम माता कौशल्या के पास पहुंचे। उनके चरणों में प्रणाम किया। गद्‌गद् होकर माता ने उन्हें हृदय से लगा लिया। उन्हें तो अभी कुछ पता ही नहीं था। वह तो प्रसन्न होकर बार-बार उनकी बलैया लेने लगीं। लेकिन जब रामचंद्रजी ने उन्हें अपने वन जाने की बात सुनाई तो कौशल्या ऐसे सूख गईं, जैसे बरसात का पानी पड़ने से जवासा सूख जाता है।

सहमि सूखि सुनि सीतलि बानी।
जिमि जवास परें पावस पानी॥

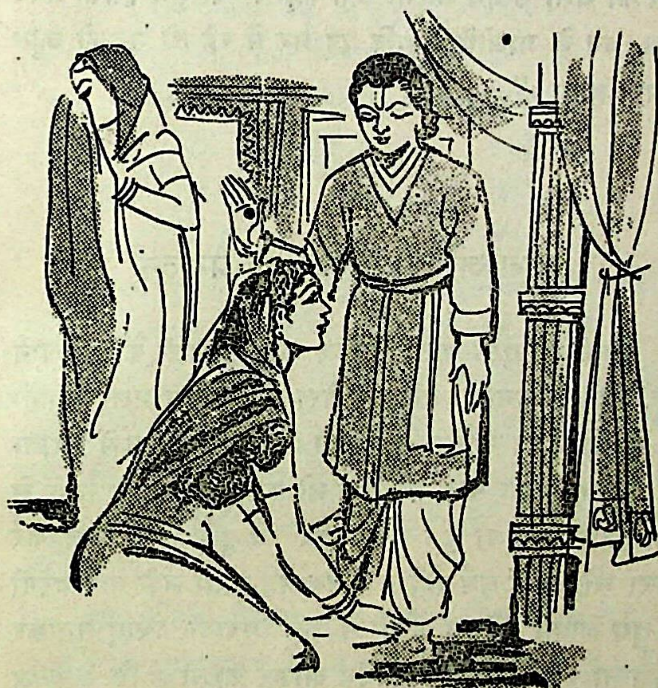
उनकी आंखों में पानी भर आया, शरीर कांपने लगा। फिर भी किसी तरह धीरज धरकर उन्होंने कहा, "यह सब किस कारण हुआ। तुम तो राजा को प्राणों से भी अधिक प्यारे थे।

फिर राजतिलक दिये जाने के इस शुभ अवसर पर उन्होंने किस अपराध से तुम्हें वन जाने की आज्ञा दी ?"

राम कुछ नहीं बोले, पर उनका मुख देखकर मंत्री-पुत्र ने उन्हें सब कथा कह सुनाई। अब तो उनकी दशा गूंगी जैसी हो गई। धर्म और स्नेह दोनों ने उनकी बुद्धि को घेर लिया, पर अंत में धीरज धरकर बोलीं, "बेटा, पिता की आज्ञा का पालन करना पुत्र का धर्म है। उन्होंने तुमको वन जाने की आज्ञा दी, इसका मुझे तनिक भी दुःख नहीं। लेकिन मैं एक बात कहती हूं—यदि केवल पिता की ही आज्ञा हो, तो माता को पिता से बड़ी मानकर वन मत जाओ। लेकिन यदि माता-पिता दोनों की आज्ञा है, तो वन तुम्हारे लिए सैकड़ों अयोध्या के समान है।"

इस प्रकार वह बराबर राम को समझाने लगीं। वह उन्हें जाने देना भी नहीं चाहती थीं, लेकिन रोक भी नहीं सकती थीं। वह इतनी दुखी थीं अपनेको भूलकर रामचंद्रजी के चरणों में झुक गईं। राम ने उन्हें उठाकर गले से लगा लिया और प्यार भरे वचन बोलकर उन्हें ढाढ़स बंधाने लगे। इसी समय सीताजी भी वहां आ पहुंचीं और राम के चरणों में सिर झुकाकर बैठ गईं। उनके नेत्रों से जल बह रहा था और वह अपने सुंदर नाखूनों से धरती कुरेदते हुए मन-ही-मन बहुत-सी बातें सोच रही थीं। उनकी ऐसी दशा देखकर कौशल्या को और भी दुःख हुआ। कहने लगीं, "सीता बड़ी सुकुमार है। सास, ससुर और कुटुंबी सब उसको प्यार करते हैं। इसके पिता जनक राजाओं में शिरोमणि हैं। ससुर, सूर्य-कुल के सूर्य हैं

और पति सूर्य-कुल-रूपी कुमुद-वन को सजानेवाले चंद्रमा तथा रूप और गुण के भंडार हैं।



सीताजी राम के चरणों में

तात सुनहु सिय अति सुकुमारी।
सास ससुर परिजनहि पिआरी॥
पिता जनक भूपालमनि ससुर भानुकुल भानु।
पति रविकुल कैरव बिपिन बिधु गुन रूप निधानु॥

"हे राम! ऐसी सीता भी तुम्हारे साथ जाना चाहती है। इसने

तो कभी पलंग से नीचे पैर भी नहीं रखा। संजीवनी बूटी के समान मैं सदा उसकी रखवाली करती रहती हूं। कभी दीये की बत्ती उठाने को भी नहीं कहा। क्या तुम इसको अपने साथ वन ले जाओगे ? यदि यह घर में रहे तो मुझको बहुत सहारा होता।"

: ५ :

सीताजी को रोकने का प्रयत्न

माता की ऐसी बातें सुनकर राम सीताजी को समझाने लगे, "हे राजकुमारी, यदि तुम मेरा और अपना भला चाहती हो तो मेरे वचन मानकर यहीं रहो। इस प्रकार तुम मेरीआज्ञा का पालन करके सास की सेवा भी करोगी। घर में रहने से सब प्रकार से भला है। सास-ससुर की पूजा करने से बढ़कर दूसरा और कोई धर्म नहीं है। जब-जब माता मुझे याद करेंगी तो तुम अपनी कोमल वाणी से उन्हें पुरानी कथाएं सुनाकर समझाना। हे सुमुखि, मैं सौगंध खाकर कहता हूं कि मैं केवल माता के लिए ही तुम्हें घर पर छोड़ रहा हूं, किसी और कारण से नहीं।"

आंपन मोर नेक जौं चहहू।
बचनु हमार मानि गृह रहहू॥
आयसु मोर सासु सेवकाई।
सब बिधि भामिनि भवन भलाई॥

एहि ते अधिक धरमु नहिं दूजा ।
सादर सासु ससुर पद पूजा ॥
जब जब मातु करिहि सुधि मोरी ।
होइहि प्रेम बिकल मति भोरी ॥
तब तब तुम्ह कहि कथा पुरानी ।
सुंदरि समुझायेहु मृदु बानी ॥
कहौं सुभाय सपथ सत मोही ।
सुमुखि मातु हित राखौं तोही ॥

यही नहीं, उन्होंने वन में होनेवाले क्लेशों और कष्टों का वर्णन भी किया। कहा, "तुम्हें कांटों और कंकड़ों से भरी जमीन पर चलना होगा। जमीन पर सोना होगा। पेड़ों की छाल के वस्त्र पहनने होंगे। कंद-मूल-फल खाने होंगे। वन में मनुष्यों को खानेवाले राक्षस रहते हैं। भयानक पशु-पक्षी झुंड-के-झुंड घूमते रहते हैं। हे हंसगामिनी, तुम वन जाने के योग्य नहीं हो।"

पति के ऐसे कोमल वचन सुनकर सीताजी के नेत्र भर आये। एकाएक उत्तर देते न बना। वह व्याकुल हो उठीं कि स्वामी मुझे छोड़ जाना चाहते हैं। फिर साहस करके उन्होंने कौशल्याजी से कहा, "मेरी ढिठाई क्षमा कीजिये। मैं आपके सामने उत्तर दे रही हूं। पति ने जो कुछ कहा है, मेरे भले के लिए कहा है, लेकिन पति के वियोग से बढ़कर दूसरा दुःख इस संसार में नहीं है।" फिर रामचंद्रजी से बोलीं, "हे प्राणनाथ, हे दया के धाम, हे सुंदर सुखों को देनेवाले, हे सुजान, हे रघुकुल-रूपी-कुमुद को खिलानेवाले चंद्रमा, आपके बिना स्वर्ग भी मेरे

लिए नरक है।

प्राननाथ करुनायतन सुंदर सुखद सुजान।
तुम्ह बिनु रघुकुल कुमुद बिधु सुरपुर नरक समान।।

"हे स्वामी, सब नाते सुख के देनेवाले हैं, लेकिन पति के बिना स्त्री को ये सब सूरज से बढ़कर तपानेवाले हैं। भोग रोग के समान है। गहने भार रूप हैं। संसार नरक है। हे स्वामी, आपके बिना कहीं कोई सुख नहीं। जिस प्रकार जीव के बिना देह, जल के बिना नदी, वैसे ही, हे नाथ, पुरुष के बिना नारी है।"

जिअ बिनु देह नदी बिनु बारी।
तैसिअ नाथ पुरुष बिनु नारी।।

"हे नाथ, आपके साथ वन में पशु-पक्षी ही मेरे कुटुम्बी होंगे। पत्तों की झोपड़ी मेरे लिए स्वर्ग होगी। वन के देवी-देवता सास-ससुर के समान मेरी देखभाल करेंगे। आपने बहुत-से दुःखों का वर्णन किया है, लेकिन, हे स्वामी, आपके वियोग से होनेवाले दुःख के सामने ये कुछ भी नहीं हैं। मैं आपके चरण-कमलों को देखती रहूंगी तो मुझे तनिक भी थकावट नहीं होगी। मैं आपकी सेवा करूंगी। आपको कोई कष्ट न होने दूंगी। आपके रहते मेरी ओर कौन आंख उठाकर देख सकता है। यदि आप मुझे यहीं छोड़कर चले गए तो मुझे बहुत ही दुःख होगा।" यह कहते-कहते सीताजी बहुत व्याकुल हो उठीं। उनकी ऐसी दशा देखकर रामचंद्रजी ने कहा, "शोक छोड़कर तुम मेरे साथ वन में चलो। आज दुःखी होने का अवसर नहीं है।" फिर उन्होंने माताजी के चरण छूकर आशीर्वाद प्राप्त किया। मां फिर व्याकुल हो उठीं और जब जानकीजी ने उनके चरण छुए तो उन्हें और भी

क्लेश हुआ। लेकिन वह क्या कर सकती थीं। बार-बार उनको हृदय से लगाने लगीं। अपने मन में धीरज रखकर उन्हें शिक्षा देने लगीं। आशीर्वाद दिया कि जबतक गंगा-जमना में जल की धारा बहती है तबतक तुम्हारा सौभाग्य अचल रहे। इस प्रकार सीताजी को सास ने अनेक प्रकार से आशीर्वाद और शिक्षाएं दीं और सीताजी बड़े प्रेम से बार-बार उनके चरण-कमलों में सिर नवाकर वहां से चली गईं।

बारहिं बार लाई उर लीन्ही।
धरि धीरजु सिख आसिष दीन्ही॥
अचल होउ अहिवात तुम्हारा।
जब लगि गंग-जमुन जलधारा॥
सीनहि सासु असीस सिख दीन्हि अनेक प्रकार।
चली नाइ पद पदुम सिरु अति हित बारहिं बार॥

: ६ :

लक्ष्मण भी तैयार होगये

जब लक्ष्मणजी को यह समाचार मिला तो वह भी व्याकुल हो उठे और शीघ्रता से रामचंद्रजी की ओर चले। उनका शरीर कांप रहा था। आंखों में आंसू भरे हुए थे। प्रेम से अधीर होकर उन्होंने रामचन्द्रजी के पांव पकड़ लिये। वह कुछ कह नहीं सकते थे। वह ऐसे दीन हो रहे थे, जैसे जल से निकलने पर मछली होती है। मन-ही-मन सोच रहे थे कि न जाने अब क्या होनेवाला

है। रामचन्द्रजी अब न जाने क्या करेंगे ! मुझे साथ ले चलेंगे या छोड़ जायंगे !

समाचार जब लछिमन पाये।
व्याकुल बिलख बदन उठि धाये ॥
कंप पुलक तन नयन सनीरा।
गहे चरन अति प्रेम अधीरा ॥
कहि न सकत कछु चितवत ठाढ़े।
मीनु दीनु जनु जल तें काढ़े ॥
सोचु हृदय बिधि का होनिहारा।
सबु सुखु सुकृतु सिरान हमारा ॥
मो कहुं काह कहब रघुनाथा।
रखिहहिं भवन कि लेहहिं साथा ॥

रामचंद्रजी ने जब भाई लक्ष्मण की इस प्रकार व्याकुलता देखी तो वह बड़े प्रेम से बोले—"हे तात, इस प्रकार अधीर होने से कोई लाभ नहीं। जो लोग माता-पिता, गुरु और स्वामी की आज्ञा मानते हैं, उनका जन्म धन्य है। हे भाई, तुम मेरी बात मानो। माता-पिता की सेवा करो। भरत और शत्रुघ्न घर पर नहीं हैं। महाराज बूढ़े और दुःखी हैं। ऐसी अवस्था में तुमको अपने साथ ले जाना अच्छा नहीं होगा। अगर मैं तुमको वन में साथ ले जाऊंगा तो सब लोग अनाथ हो जायंगे। इसलिए तुम यहीं रहो और सबको संतोष देते रहो। नहीं तो, हे तात, बहुत बुरी बात होगी। जिसके राज्य में प्रजा दुखी रहती है वह राजा नरक में जाता है।"

मैं बन जाऊं तुम्हहि लेइ साथा।
होइ सबहि बिधि अवध अनाथा॥
गुर पितु मातु प्रजा परिवारू।
सब कहुं परइ दुसह दुख भारू॥
रहहु करहु सब कर परितोषू।
नतरु तात होइहि बड़ दोषू॥
जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी।
सो नृपु अवसि नरक अधिकारी॥

राम के ये वचन सुनते ही लक्ष्मण ऐसे सूख गये, जैसे पाला पड़ने पर कमल सूख जाता है। बोले, "मैं तो आपका दास हूं। आप मुझे यहां छोड़ जायंगे तो मैं क्या कर सकता हूं। आपने मुझे बहुत अच्छी सलाह दी है, लेकिन मैं क्या करूं। मैं तो आपके स्नेह में पला हुआ छोटा-सा बच्चा हूं। विश्वास रखिये, आपको छोड़कर मैं किसी को नहीं जानता। मेरे सबकुछ आप ही हैं। धर्म और नीति का उपदेश तो उसको देना चाहिए, जिसे यश, ऐश्वर्य या सद्गति से प्रेम हो। लेकिन जब मैंने मन, वचन और कर्म से आपके ही चरणों में प्रेम रखा है तो उसे कैसे छोड़ सकता हूं।"

जब लक्ष्मणजी ने इस प्रकार कहा तो रामचन्द्रजी ने उन्हें हृदय से लगा लिया और बोले, "भाई, जाओ, तुम भी अपनी माताजी से आज्ञा ले आओ।"

लक्ष्मणजी प्रसन्न होकर तुरंत अपनी माता सुमित्रा के पास पहुंचे और उनको सब कथा विस्तार से कह-सुनाई। इस कथा को सुनकर सुमित्रा ऐसे सहम गईं, जैसे हिरनी चारों ओर वन में

लगी हुई आग को देखकर सहम जाती है। उनकी यह अवस्था देखकर लक्ष्मणजी बहुत दुखी हुए। वह डर गये कि शायद मुझे माता वन जाने की आज्ञा न दें। लेकिन सुमित्रा बड़े प्यार से बोलीं— "बेटा, सीता तुम्हारी माता हैं और राम तुम्हारे पिता। जहां राम रहते हैं वहीं अयोध्या है। जहां सूर्य का प्रकाश होता है, वहीं तो दिन निकलता है। यदि सीता, राम वन को जा रहे हैं



सुमित्रा ने कहा, "बेटा, जहां राम रहते हैं, वहीं अयोध्या है।"

तो तुम्हारा अयोध्या में कुछ काम नहीं। तुम भी उनके साथ जाओ। मैं प्रसन्नता के साथ तुमको वन जाने की आज्ञा देती हूं।

अवध तहां जहं राम निवासू।
तहइ दिवसु जहं भानु प्रकासू॥
जौं पै सीय राम बन जाहीं।
अवध तुम्हार काज कछु नाहीं॥

सुमित्रा ने कहा "मैं बलिहारी जाती हू। तुम और मैं बड़े सौभाग्यशाली हैं, जो तुम्हारे मन ने राम के चरणों में स्थान प्राप्त किया है। संसार में वही स्त्री वास्तव में पुत्रवती है, जिसका पुत्र राम-भक्त हो। जो स्त्री राम के विरोधी पुत्र को अपना हितू मानती है वह तो बांझ ही अच्छी। सब प्रकार के विकारों को त्यागकर, मन, वचन, कर्म से तुम वन में सीता और राम की सेवा करो। वही करना, जिससे रामचंद्र को वन में कोई क्लेश न हो। हे तात, मेरा यह उपदेश है। ऐसा काम करना, जिससे वन में तुम्हारे कारण राम और सीता सुख से रहें। माता, पिता, परिवार तथा नगर के सुखों को भूल जाओ।"

इस प्रकार लक्ष्मणजी को शिक्षा देकर सुमित्राजी ने वन जाने की आज्ञा दी। फिर आशीर्वाद दिया कि सीता-राम के चरणों में तुम्हारा निर्मल और प्रगाढ़ प्रेम सदा नया बना रहे।

उपदेसु येहु जेहिं तात तुम्हरे रामु सिय सुखु पावहीं।
पितु मातु प्रिय परिवारु पुर सुख सुरति बनं बिसरावहीं॥
तुलसी प्रभुहि सिख देई आयेसु दीन्ह पुनि आसिष दई।
रति होउ अबिरल अमल सिय रघुबीर पद नित नित नई॥

: ७ :

माता-पिता और पुरवासियों की वेदना

इसके बाद माताजी के चरणों में सिर नवाकर लक्ष्मणजी तुरंत रामचंद्रजी के पास पहुंचे और उनके साथ ही राजभवन में आये। नगर के स्त्री-पुरुष आपस में चर्चा कर रहे थे कि विधाता ने बनी हुई बात बिगाड़ दी। वे ऐसे व्याकुल हो रहे थे जैसे शहद के छिन जाने पर शहद की मक्खियां व्याकुल होती हैं। सिर धुन-धुनकर पछता रहे थे और राजद्वार पर भीड़ जमा हो रही थी। रामचंद्रजी के आने का समाचार पाकर मंत्रियों ने राजा को उठाकर बिठाया। सीतासहित राम-लक्ष्मण को वन जाने के लिए तैयार देखकर राजा और भी विचलित हो उठे। प्रेम के वश होकर वह बार-बार उन्हें गले से लगाने लगे। राम ने कहा, "पिताजी आशीर्वाद दीजिये और आज्ञा दीजिये। यह तो हर्ष का समय है, इस समय आप शोक क्यों कर रहे हैं? आपको ऐसे देखकर लोग समझेंगे कि आप कर्तव्य नहीं करना चाहते। इससे आपकी निंदा होगी।"

महाराज ने इस समय भी रामचंद्रजी को वन जाने से रोकने का प्रयत्न किया, लेकिन सफल न हो सके। इस पर उन्होंने सीताजी को हृदय से लगाकर बहुत प्रकार समझाया। वन के कष्टों का वर्णन किया। मंत्री सुमंत की पत्नी और गुरु-पत्नी अरुंधती सब चतुर स्त्रियों ने उन्हें प्यार से समझाया, लेकिन वे प्यार भरी और मधुर बातें सीताजी को अच्छी नहीं लगीं। वह व्याकुल हो उठीं। संकोचवश उत्तर न दे सकीं।

उधर इन बातों को सुनकर कैकेयी तमककर उठी और मुनियों के वस्त्र राम के आगे रखे, फिर कोमल वाणी में कहा--"हे, राम, राजा तुमको प्राणों से भी अधिक प्यार करते हैं। वह इस दुर्बलता के कारण शील और स्नेह नहीं छोड़ेंगे। पुण्य, यश और परलोक ये चाहें सब नष्ट हो जायं, पर वह तुम्हें वन जाने को नहीं कहेंगे। यह जानकर जो तुम्हें अच्छा लगे वह करो।"

माता कैकेयी के ये वचन सुनकर राम बड़े सुखी हुए, लेकिन राजा को ये वचन बाण के समान लगे। सोचने लगे, मेरे प्राण कहां अटके हुए हैं और वह मूर्च्छित हो गये। किसी को कुछ नहीं सूझा। सब व्याकुल हो रहे थे। रामचंद्रजी ने तुरंत मुनि का वेश बनाया और माता-पिता को सिर नवाकर वहां से चले गए।

नृपहि प्रानप्रिय तुम्ह रघुबीरा।
सील सनेह न छाड़िहि भीरा॥
सुकृत सुजसु परलोक नसाऊ।
तुम्हहि जान बन कहिहि न काऊ॥
अस बिचारि सोइ करहु जो भावा।
राम जननिसिख सुनि सुखु पावा॥
भूपहि वचन बानसम लागे।
करहिं न प्रान पयान अभागे॥
लोग बिकल मुरुछित नरनाहू।
काह करिअ कछु सूझ न काहू॥
रामु तुरत मुनिवेषु बनाई।
चले जनक जननिहि सिरु नाई॥

: ८ :

प्रस्थान

राज-महल से चलकर रामचंद्रजी वसिष्ठजी के द्वार पर आये और सब मनुष्यों को समझाने लगे। ब्राह्मणों को उन्होंने वर्ष भर



वन-गमन

का भोजन दान में दिया। फिर दूसरे याचकों को धन देकर संतुष्ट किया। उन्होंने अपने दास-दासियों को गुरुजी को सौंपा और प्रार्थना की, "हे गुरुदेव, इन सबकी माता-पिता के समान

देखभाल करते रहिये।" फिर उन्होंने पुरवासियों को बार-बार हाथ जोड़कर प्रार्थना की, "आप सब लोग ऐसे कार्य करें, जिससे मेरी माताएं दुखी न हों।" उसके बाद वे देवताओं को मनाकर और उनका आशीर्वाद प्राप्त कर चल पड़े। राम के वन जाने से सारे नगर में हाहाकार मच उठा।

उधर जब राजा की मूर्च्छा दूर हुई तो उन्होंने सुमंत को बुलवाया और कहा, "राम चले गए, लेकिन मैं जीवित हूं। इतना दुःख पाकर भी मेरे प्राण नहीं निकलते। हे मित्र, तुम रथ लेकर श्रीराम के साथ जाओ और दो-चार दिन वन घुमाकर उन्हें यहां ले आओ। यदि वे दोनों भाई न लौटें तो उनसे कहना कि सीता को तो लौटा ही दें। यदि वह भी लौट आई तो मेरे प्राणों का सहारा हो जायगा, नहीं तो मेरा अंत आ ही गया है।" इतना कहकर राजा फिर मूर्च्छित हो गये।

राजा की आज्ञा पाकर सुमंत रथ लेकर वहां पहुंचे, जहां राम थे। उन्होंने उनसे राजा की इच्छा कह सुनाई और विनती करके उनको रथ पर चढ़ाया। वे सब रथ पर चढ़े और मन-ही-मन अयोध्या को सिर नवाकर वन की ओर चले। सारा नगर राम के वियोग में डूब गया।

: ६ :

निषाद-मिलन

राम वन की ओर चले तो प्रजा भी उनके साथ चल पड़ी। राम के बहुत समझाने पर भी कोई लौटने को तैयार

न हुआ। तमसा नदी के किनारे सबने विश्राम किया और जब प्रजा सो रही थी—राम, लक्ष्मण और सीता रथ पर बैठकर वहां से निकल चले। प्रातःकाल प्रजा शोक मनाती हुई अयोध्या लौट आई। राम श्रृंगवेरपुर पहुंचे। जिस समय निषाद को राम के आने का समाचार मिला तो वह बंधु-बांधवोंसहित भेंट लेकर राम के स्वागत को आया।

यह सुधि गुह निषाद जब पाई।
मुदित लिये प्रिय बंधु बुलाई॥
लै फल फूल भेंट भरि भारा।
मिलन चलेउ हिय हरषु अपारा॥

राम ने बड़े प्रेम से उसका स्वागत किया और निषाद ने उनको नगर में पधारने का निमंत्रण दिया। लेकिन राम बोले—

वर्ष चारिदस बासु बन मुनिव्रत वेषु अहारु।
ग्रामवासु नहिं उचित सुनि गुहहि भयउ दुख भारु॥

—मुझे चौदह वर्ष तक वन में रहना है, मुनियों का व्रत और वेष धारण करके वैसा ही भोजन करना है। मुझे नगर में नहीं जाना चाहिए।

यह बात सुनकर निषाद को बहुत दुःख हुआ। गांव के अन्य नर-नारी भी वहां आये और राम के सुंदर रूप को निरखने लगे। स्त्रियां आश्चर्य करने लगीं कि उनके माता-पिता कैसे कठोर हैं, जिन्होंने ऐसे सुंदर बालकों को वन में भेज दिया। पर एक नारी अपनी सखी से बोली, "सखी, राजा ने अच्छा ही किया, जो इन्हें भेजा। ब्रह्मा की कृपा से हमें भी इनको देखने का अवसर मिल गया।"

एक कहहिं भल भूपति कीन्हा ।
लोचन लाहु हमहिं विधि दीन्हा ।।

रात होने पर राम और सीता भूमिपर ही सोये । लक्ष्मण पहरा देने लगे । यह देखकर निषाद को बहुत दुःख हुआ । सवेरा होने पर राम-लक्ष्मण ने जब अपनी सिर की जटाओं को ठीक किया तो सुमंत का जी भर आया । उसने कहा, "चलते समय राजा ने मुझे आज्ञा दी थी कि दोनों भाइयों को वन दिखाकर और गंगा-स्नान कराकर जल्दी ही वापस ले आना ।" इतना कहकर सुमंत बच्चों की तरह रोने लगा और बार-बार राम से अयोध्या लौट चलने की विनती करता हुआ बोला, "हे राम, कृपाकर ऐसा कीजिये, जिससे अयोध्या अनाथ न हो ।"

तब राम सुमंत को अनेक प्रकार से समझाने लगे । कहने लगे, "सत्य से बढ़कर दूसरा कोई धर्म नहीं है । मैं सत्य का पालन करने का निश्चय कर चुका हूं । अब उसे छोड़ूंगा तो धर्म की मर्यादा घटेगी । तुम भी तो मेरे पिता की तरह मेरी भलाई चाहनेवाले हो । मैं हाथ जोड़कर तुमसे यही विनती करता हूं कि तुम सब तरह से वही काम करना, जिससे पिता-जी को दुःख न पहुंचे ।"

अंत में सुमंत ने राजा का आखिरी संदेश कह सुनाया । राजा ने कहा था, "सीताजी वन के दुखों को नहीं सह सकेंगी । उन्हें अवश्य ले आना । उनके न आने पर मैं जल के बिना मछली की तरह जी नहीं सकूंगा ।"

यह सुनकर राम ने सीता को समझाया और कहा कि वह चाहें तो अब भी लौट सकती हैं । इसपर सीताजी बोलीं,

"हे प्रभु, हे दयालु, आप तो बड़े ज्ञानी हैं। क्या शरीर को छोड़कर छाया कहीं रह सकती है ? गरमी सूरज को छोड़कर और चांदनी चंद्रमा को छोड़कर कहां जा सकती है।"

प्रभु करुनामय परम बिबेकी।
तनु तजि रहत छांह किमि छेंकी ।।
प्रभा जाइ कहं भानु बिहाई।
कहं चन्द्रिका चंदु तजि जाई ।।

यह कहकर सीताजी ने लौटने से इन्कार कर दिया। सुमंत को ही लौटना पड़ा। वह इस प्रकार अयोध्या लौटा, जिस प्रकार व्यापारी अपना सब धन गंवाकर घर लौट आता है।

: १० :

केवट की अनोखी चाह

सुमंत को लौटाकर राम गंगा-तट पर आये और नाव मंगवाई; परंतु केवट नाव नहीं लाया। कहने लगा, "प्रभु मैं आपके भेद को जानता हूं। आपके कमलरूपी चरणों की धूलि में ऐसी शक्ति है कि वह छूते ही मनुष्य बना देती है। आपने शिला को छूकर सुंदर नारी बना दिया था। मेरी नाव तो पत्थर की भी नहीं, काठ की है। अगर यह नाव मुनि की पत्नी बन गई तो मेरा धंधा ही जाता रहेगा। हे प्रभो, यदि आप पार जाना चाहते हो तो मुझे अपने कमलरूपी चरण धो लेने दो।"

मांगी नाव न केवटु आना।
कहइ तुम्हार मरमु मैं जाना ।।

चरनकमल रज कहुं सबु कहई ।
मानुष करनि मूरि कछु अहई ॥
छुअत सिला भई नारि सुहाई ।
पाहन तें न काठ कठिनाई ॥
तरिनिउं मुनिघरनी होई जाई ।
बाट परै मोरि नाव उड़ाई ॥
एहिं प्रतिपालउं सबु परिवारू ।
नहिं जानौं कछु और कबारू ॥
जौं प्रभु पार अवसि गा चहहू ।
मोहि पदपदम पखारन कहहू ॥

वह बोला, "मैं आपसे कोई उतराई नहीं लूंगा । आप तो संसाररूपी समुद्र से पार उतारने वाले हैं । मैं सच कहता हूं, चाहे लक्ष्मण मुझे तीर ही न मार दें, मैं उस समय तक आपको पार नहीं उतारूंगा जबतक आपके चरण न धो लूं ।"

केवट के यह वचन सुनकर रामचंद्रजी हंसने लगे । बोले, "अच्छा, तुम वही काम करो, जिससे तुम्हारी नाव न जाने पावे । पैर धो लो और जल्दी से हमें पार उतार दो ।"

केवट तुरंत काठ के बरतन में जल भरकर ले आया और तब—

बरषि सुमन सुर सकल सिहाहीं ।
एहि सम पुन्यपुंज कोउ नाहीं ॥
अति आनन्द उमगि अनुरागा ।
चरन सरोज पखारन लागा ॥

देवता पुष्प बरसाकर केवट की सराहना करने लगे कि इसके समान दूसरा कोई पुण्यात्मा नहीं है । केवट आनन्द और प्रेम में भरकर राग के कमलरूपी चरण धोने लगा । उस चरणामृत



चरण सरोज पखारन लागा

को उसने स्वयं पिया और अपने सारे परिवार को पिलाया। इस प्रकार अपने पितरों को भी तार दिया। फिर रामसहित सीता और लक्ष्मण को गंगा के पार ले गया।

पद पखारि जलु पान करि, आपु सहित परिवार।
पितर पारु करि प्रभुहि पुनि, मुदित गयउ ले पार॥

राम सोचने लगे—केवट को कुछ देना चाहिए, लेकिन उनके पास देने योग्य कोई वस्तु नहीं थी। सीताजी पति के मन की बात समझ गईं और उन्होंने अपनी मणि की अंगूठी उतारकर दी। राम बोले, "केवट, यह अपनी उतराई लो।" केवट ने राम के चरण पकड़ लिये। बोला "हे नाथ, आज मैंने क्या नहीं पाया! मेरे सारे दोष, दुःख और दरिद्रता सब मिट गये। मैं तो बहुत समय से मजूरी कर रहा हूं। आज आपने मुझे पूरी मजूरी दे दी है। मुझे और कुछ नहीं चाहिए, केवल आपकी कृपा मुझपर बनी रहे।"

नाथ आजु मैं काह न पावा।
मिटे दोष दुख दारिद दावा॥
बहुत काल मैं कीन्ह मजूरी।
आजु दीन्ह विधि बनि भलि मूरी॥

राम ने केवट से फिर आग्रह किया कि वह उतराई ले ले, परंतु उसने कुछ नहीं लिया। अंत में राम ने अपनी भक्ति का पवित्र वरदान देकर उसे विदा किया।

: ११ :

ऋषि-मुनियों के आश्रमों में

चलते-चलते वे तीर्थराज प्रयाग पहुंचे। उस सुंदर प्रयागराज की महिमा का बखान कौन कर सकता है ?

तीर्थराज प्रयाग को देखकर राम बहुत प्रसन्न हुए और उसकी महिमा का बखान करने लगे। वे संगम पर पहुंचे, स्नान किया और फिर शिव की पूजा की। वहां से भरद्वाज मुनि के आश्रम में आगये। उनको देखकर मुनि का हृदय प्रेम से गद्‌गद् होगया। वह अपने जीवन को सफल समझने लगे और—

कुशल प्रस्न करि आसन दीन्हे।
पूजि प्रेम परिपूरन कीन्हे॥
कंद मूल फल अंकुर नीके।
दिये आनि मुनि मनहुं अमीके॥

कुशल-समाचार पूछकर उनको बैठने के लिए आसन दिया। प्रेम के साथ उनका आदर-सत्कार किया। खाने के लिए उत्तम-उत्तम कंद-मूल दिये, जो अमृत के समान मीठे थे। इन्हें खाकर सबकी थकावट दूर होगई और सब बातें करने लगे। मुनि बोले, "आज हमारा तप करना और तीर्थ में रहना सफल हुआ। आज हमारा यज्ञ करना, जप करना और विषयों से दूर रहना सब सफल हुआ। हे राम, आज तुमको देखकर सारे अच्छे कर्मों का फल मिल गया। अब मुझे कोई लाभ या सुख नहीं चाहिए। तुम्हारे दर्शनों से मेरी सब आशाएं पूरी होगईं। मुझे आप कृपा

करके यह वरदान दो कि आपके चरण-कमलों में मेरा प्रेम बना रहे।"

मुनि की ऐसी बातें सुनकर राम सकुचाने लगे। वह उनके भक्ति-भाव में डूब गये। बोले, "जिसको आप आदर देते हैं वह सब तरह से गुणवान और बड़ा हो जाता है।"

राम के आने का समाचार पाकर अन्य ब्रह्मचारी, मुनि, तपस्वी, और साधु वहां आ पहुंचे। राम ने उनको प्रणाम किया और उन्होंने प्रसन्न होकर बड़े सुख का अनुभव करते हुए आशीर्वाद दिया। रात को राम ने वहां विश्राम किया। सवेरे स्नान करने के बाद मुनि को प्रणाम करके वे आगे बढ़ने के लिए तैयार होगये। पूछने लगे, "हे मुनि, बताइये हम किस रास्ते से जायं ?"

मुनि बोले, "आपके लिए तो सभी रास्ते आसान हैं।"

मुनियों ने अपने शिष्यों में से छांटकर चार को राम के साथ कर दिया। वे राम के साथ-साथ चले; लेकिन राम ने बहुत हठ करके उनको लौटा दिया। राम जिन-जिन गांवों में से होकर जाते वहां के नर-नारी उनके दर्शन के लिए इकट्ठे हो जाते। गांव की स्त्रियां राम को देखकर कलशों में पानी भर लातीं। कहतीं, "हे प्रभु, आप ज़रा-सा आचमन कर लें।" राम उनके प्रेम को देखकर वट-वृक्ष के नीचे ठहर जाते और थोड़ा विश्राम कर लेते। एक स्थान पर कुछ स्त्रियों ने यह जानने का प्रयत्न किया कि इन तीनों का आपस में क्या रिश्ता है। एक स्त्री सीताजी से कहने लगी—

"हे सुंदर मुखवाली, बताओ तो ये करोड़ों कामदेवों को रिझानेवाले तुम्हारे क्या लगते हैं ?"

कोटि मनोज लजावनि हारे।
सुमुखि कहहु को आहिं तुम्हारे ॥

सीताजी ने उत्तर दिया—

सहज सुभाय सुभग तन गोरे।
नामु लखन लघु देवर मोरे ॥
बहुरि बदनु बिधु अंचल ढांकी।
पिय तन चितहिं भौंह करि बांकी ॥

—ये जो सीधे स्वभाव और गोरे शरीर के हैं, ये मेरे छोटे देवर हैं। इनका नाम लक्ष्मण है। इसके बाद सीताजी ने चंद्रमा के समान अपने मुख को आंचल में ढंक लिया। वह भौंहें टेढ़ीकर अपने पति की ओर देखने लगीं। इस प्रकार इशारे से उन्होंने राम का परिचय दिया। स्त्रियों ने सीताजी को नाना प्रकार से आशीष दी। आगे भी रास्ते में इसी तरह स्त्री-पुरुष मिलते रहे और अपने-अपने मन की बातें कहते रहे। कोई कहती, "राजा ने अच्छा नहीं किया, जो इन कुमार बालकों को वन भेज दिया!" कोई कहती, "राजा बहुत अच्छे हैं, यदि वे इन्हें वन नहीं भेजते तो हम उनके दर्शन कैसे करते!" कोई कहतीं—

ते पितु मातु धन्य जिन्ह जाये।
धन्य सो नगरु जहां ते आये ॥

—वे माता-पिता धन्य हैं, जिन्होंने इन्हें पैदा किया! वह नगर धन्य है, जहां से ये आये हैं!

इस तरह से उस वन में चलते हुए राम चित्रकूट के पास पहुंच गये। रात हो चली थी। सीताजी बहुत थक गई थीं। बड़ के एक पेड़ के नीचे वे सब लोग ठहर गये। रात को वहां

आराम किया और सवेरे नित्य-कर्म से छुट्टी पाकर फिर आगे चल दिये। सुन्दर वन, तालाब और पहाड़ियों को देखते हुए वे ऋषि वाल्मीकी के आश्रम में पहुंचे।

देखत बन सर सैल सुहाये।
बालमीकि आश्रम प्रभु आये॥
मुनि कहुं राम दंडवत कीन्हा।
आसिरबादु बिप्रबर दीन्हा॥

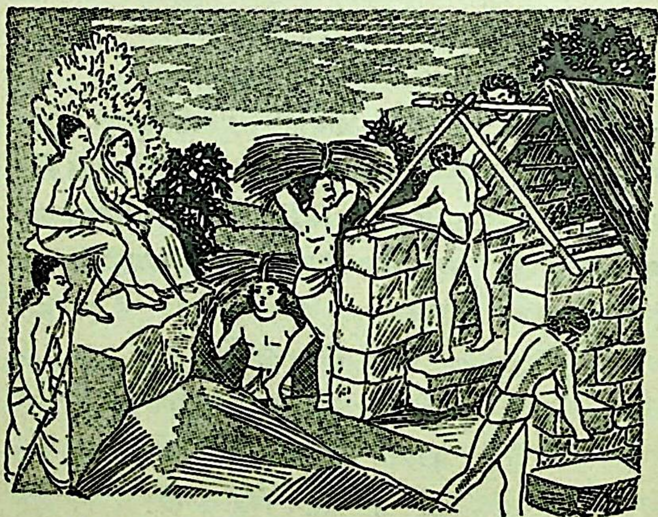
राम ने मुनि को दण्डवत किया और मुनि ने उनको आशीर्वाद दिया। फिर मीठे-मीठे फल-मूल मंगवाये। राम, सीता और लक्ष्मण तीनों ने फल खाये। वाल्मीकि का मन बड़ा प्रसन्न हुआ। राम के दर्शन पाकर वह गद्गद् हो उठे। उन्होंने राम से चित्रकूट पर निवास करने को कहा।

चित्रकूट गिरि करहु निवासू।
तहं तुम्हार सब भांति सुपासू॥
सैलु सुहावन, कानन चारू।
करि केहरि मृग बिहग बिहारू॥

—हे राम, चित्रकूट पहाड़ पर रहो। वहां आपको सब तरह का आराम मिलेगा। सुहावने पर्वत हैं, सुंदर वन हैं। हाथी, सिंह, हिरण और पक्षी सब वहां आनंद से घूमते हैं।

इस प्रकार महामुनि वाल्मीकि ने चित्रकूट की महिमा का वर्णन किया। मंदाकिनी में स्नान करने के बाद राम ने वहीं ठहरने का निश्चय किया। लक्ष्मण ने एक अच्छी-सी जगह देख ली। देवता समझ गये कि राम यहां रहनेवाले हैं। इसलिए वे कुटिया बनाने की तैयारी करने लगे।

कोल किरात वेष सब आये।
रचे परन तन सदन सुहाये॥
बरनि न जाहिं मंजु दुई साला।
एक ललित लघु एक बिसाला॥



कोल-किरातों के वेश में आये हुए देवता कुटिया बनाने लगे।

कोल-किरातों का वेष धारण करके वे सब वहां आ पहुंचे। उन्होंने पत्तों और कुशा के तिनकों से एक सुन्दर घर बना दिया। उन्होंने दो ऐसी सुन्दर कुटिया बनाईं, जिनका वर्णन नहीं किया जा सकता। एक कुटिया छोटी थी, दूसरी बड़ी। राम, लक्ष्मण और सीता उन कुटियों में रहने लगे।

: १२ :

दशरथ-मरण

इधर जब केवट अपने स्थान पर लौटा तो सुमंत अभी तक वहीं ठहरा था। केवट को अकेला देखकर वह रोने लगा। अनेक प्रकार से धीरज बंधाकर केवट ने सुमंत को अयोध्या लौट जाने को कहा। दुखी मन सुमंत अयोध्या लौट गया। उसके रथ को खाली देखकर सारी अयोध्या शोक में डूब गई। नर-नारी विलाप करने लगे। रनिवास व्याकुल हो उठा। राजमहल ऐसा लगने लगा, मानों प्रेतों का स्थान हो। सुमंत ने अंधेरा होने पर ही अयोध्या में प्रवेश किया था। वह चुपचाप महल में चला गया। उसे देखकर रानियां अत्यन्त दुखी हुईं और बहुत-सी बातें पूछने लगीं। लेकिन वह कुछ उत्तर नहीं दे सका। वह कौशल्या के महल में पहुंचा। उसने वहां राजा को ऐसे बैठे देखा, मानो बिना अमृत के चंद्रमा हो। वह आभूषणों से रहित पृथिवी पर बैठे हुए थे। क्षण-क्षण में शोक से छाती भर उठती और बार-बार 'राम-राम', 'हे प्यारे राम' कहते और फिर 'हा राम, हा लक्ष्मण, हा जानकी' कहते!

सुमंत को देखते ही उन्होंने उसे हृदय से लगा लिया तथा स्नेह से पास बैठाकर नेत्रों में जल भरकर पूछने लगे—

राम कुसल कहु सखा सनेही।
कहं रघुनाथ लखनु वैदेही॥
आने फेरि कि बनहि सिधाये।
सुनत सचिव लोचन जल छाये॥

सोक बिकल पुनि पूछि नरेसू।
कहु सिय राम लखन संदेसू॥
राम रूप गुन सील सुभाऊ।
सुमिरि सुमिरि उर सोचत राऊ॥

—हे परम सखा, राम की कुशल कहो। बताओ राम, लक्ष्मण और सीता कहां हैं? उन्हें लौटा लाये हो या वे वन को चले गए?

यह सुनते ही मंत्री के नेत्र गीले हो गयें। शोक से व्याकुल राजा फिर पूछने लगे, "सीता, राम और लक्ष्मण का संदेश तो कहो।" इस प्रकार राम के रूप, गुण, शील और स्वभाव को याद करके राजा सोच करने लगे। मंत्री ने उन्हें समझाया, लेकिन उनपर किसी प्रकार का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। तब सुमंत ने राजा को बताया कि किस प्रकार केवट ने राम की सेवा की और उन्हें गंगा के पार उतारा। उन्होंने राम का संदेश भी दिया, लेकिन राजा उसी प्रकार तड़पते रहे। कौशल्या समझ गईं कि सूर्य-कुल का सूर्य अस्त हो चला है। उन्होंने पति को बहुत धीरज बंधाने का प्रयत्न किया। प्रिय पत्नी के कोमल वचन सुनकर राजा ने एक बार आंखें खोलीं और रानी को श्रवण-कुमार की कथा सुनाने लगे। उसके पश्चात् निरन्तर राम का नाम लेते हुए उन्होंने अपना शरीर त्याग दिया। सारे नगर में कोहराम मच गया। सब कैकेयी को गालियां देने लगे। सवेरा होने पर मुनि वसिष्ठ वहां आ गये। उन्होंने सबको ज्ञान की बातें कहकर शोक दूर करने का प्रयत्न किया। राजा के शव को तेल में रखवाया और दूतों को तुरंत भरत के पास भेजा।

दूतों ने भरत को कुछ भी नहीं बताया । परंतु वह तुरंत उनके साथ लौटे । रास्ते में नाना प्रकार के अपशकुन हो रहे थे । सब कुछ शोभा-हीन था । नगर के स्त्री-पुरुष भी अत्यंत दुखी थे । केवल कैकेयी ही थी, जो भरत को देखकर प्रसन्न हुई । उसने अपने नैहर की कुशल पूछी । कुशल-समाचार सुनकर भरत पूछने लगे, "पिताजी कहां हैं ? माताएं कहां हैं ? सीता, राम और लक्ष्मण कहां हैं ?" और जब उन्हें सब बातों का पता लगा तो शोक के मारे बेहाल हो गये और 'हा तात' कहते हुए पृथ्वी पर गिर पड़े । नाना प्रकार से विलाप करने लगे । कैकेयी उन्हें धीरज बंधा रही थी; लेकिन भरत सबकुछ जानकर बहुत दुःखी हुए । उन्होंने अपनी माता की बड़ी निंदा की । वह तुरंत कौशल्या के पास पहुंचे और बेसुध होकर उनके चरणों में गिर पड़े । कौशल्या बहुत दुखी हुईं और बड़े प्यार से उन्हें समझाने लगी । वसिष्ठजी ने भी आकर भरत को धीरज बंधाया । उनके कहने पर किसी प्रकार उन्होंने राजा का दाह-संस्कार किया, लेकिन राजगद्दी पर बैठने के लिए वह किसी भी तरह तैयार नहीं हुए । उन्होंने राम को वापस लाने के लिए वन में जाने का निश्चय प्रकट किया । उनका यह निश्चय सबको भाया । माताएं भी उनके साथ चलने को तैयार हुईं । उनका विश्वास था कि भरत के समझाने से राम वापस लौट आयंगे । इसलिए वे लोग रथ, हाथी, घोड़े, पालकी, सेना सबकुछ लेकर चलने के लिए तैयार हो गये । उन्होंने विश्वस्त सेवकों को नगर सौंपा और वन की ओर चल पड़े ।

: १३ :

चित्रकूट में वास

उधर राम, लक्ष्मण और सीता चित्रकूट में निवास कर रहे थे। भील-कोल उनके पास आते थे, उनके दर्शन करते थे और प्रसन्न होकर कहते थे—

हम सब भांति करब सेवाई।
करि केहरि अहि बाघ बराई॥
बन बेहड़ गिरि कंदर खोहा।
सब हमार प्रभु पग पग जोहा॥

—हे राम, हम सब आपके हैं, आपकी सेवा करेंगे। हम आपको हाथी, शेर, सर्प और बाघों से बचायंगे। हे प्रभु, यहां के भयानक वन, पहाड़ और दर्रे सब अच्छी तरह हमारे देखे हुए हैं।

राम उनकी ये बातें सुनकर बड़े प्रसन्न हुए। वह केवल उनका प्रेम चाहते थे। वे उनकी बातें ऐसे सुनते थे, जैसे पिता अपने बालकों की बातें सुनते हैं। उन्होंने बड़े प्रेम के साथ उनको विदा किया। इनके वहां रहने से सारे मुनि, देवता और साधु बड़े प्रसन्न हुए।

जबतें आइ रहे रघुनायकु।
तबतें भयउ बनु मंगलदायकु॥
फूलहिं फलहिं बिटप बिधि नाना।
मंजु बलित बर बेलि बिताना॥

जब जब राम अवध सुधि करहीं।
तब तब बारि बिलोचन भरहीं॥
सुमिरि मातु पितु परिजन भाई।
भरत सनेहु सीलु सेवकाई॥
कृपा सिन्धु प्रभु होंहि दुखारी।
धीरजु धरहिं कुसमउ बिचारी॥

—जबसे राम वन में आकर बसे हैं तबसे वन सबके लिए मंगलमय होगया है। तरह-तरह के पेड़ फलने-फूलने लगे हैं। उनसे लिपटी हुई बेलों से सुंदर मण्डप बन गया है। जब कभी राम अयोध्या की याद करते हैं तो उनकी आंखों में जल भर आता है। माता-पिता परिजन भाई और भरत का प्रेम और शील तथा सेवाभाव को याद करके कृपा के समुद्र राम दुःखी हो जाते हैं। लेकिन बुरे दिन समझकर वह धीरज धारण कर लेते हैं। राम की ऐसी दशा देखकर सीता और लक्ष्मण भी दुःखी होते थे। वे उनको नाना प्रकार से धीरज बंधाते थे। इस प्रकार धीरे-धीरे दिन व्यतीत हो रहे थे।

उधर भरत सब लोगों के साथ अयोध्या से चलकर तमसा नदी के किनारे आये। रात को विश्राम करने के बाद दूसरे दिन वे गोमती के किनारे पहुंचे। वहां रात को विश्राम किया और अगले दिन शृंगवेरपुर पहुंचे। जिस समय गुह को यह पता लगा कि भरत भारी सेना लेकर आये हैं तो उसका मन शंका से भर उठा। सोचने लगा—भरत वन में भी राम से लड़ने आया है और उसने उनको रोकने की तैयारी की।

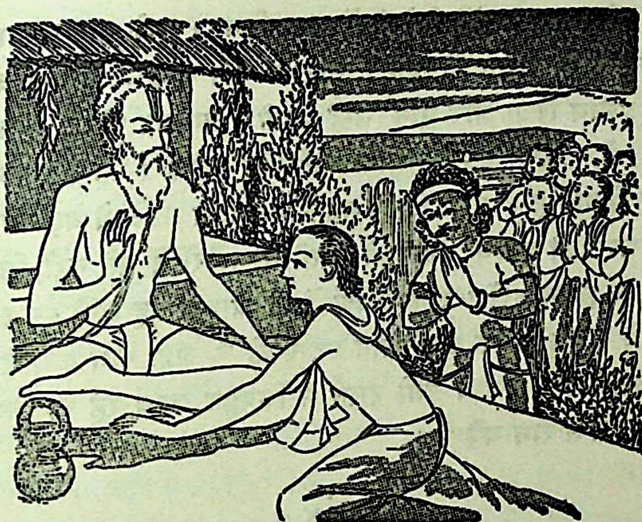
अस बिचारि गुहं ग्यानि सन कहेउ सजग सब होहु ।
हथवांसहु बोरहु तरनि कीजिअ घाटारोहु ॥
होहु संजोइल रोकहु घाटा ।
ठाटहु सकल मरै के ठाटा ॥
सनमुख लोह भरत सन लेऊं ।
जिअत न सुरसरि उतरन देऊं ॥

ऐसा विचार करके उसने अपने जातिवालों से कहा, "सब लोग चौकस हो जाओ। नावों को हाथों में संभाल लो और फिर उनको डुबो दो। सारे घाटों को रोक लो। सब लोग मरने के लिए तैयार हो जाओ। मैं भरत से डटकर लोहा लूंगा। जीते-जी उसको गंगा पार नहीं उतरने दूंगा।"

इन लोगों में एक बूढ़ा आदमी था। उसने समझाया कि बिना विचारे कोई ऐसा काम न करो, जिससे पीछे पछताना पड़े। उसकी सलाह मानकर गुह भरत से मिलने के लिए चला। उसने बहुत-सी-भेंट ली। वह उनके मन की बात जानना चाहता था। उसने मुनि वशिष्ठ को देखकर उन्हें प्रणाम किया। मुनि ने उसको आशीर्वाद देकर सब बातें बताईं और फिर उसे भरत के पास ले गये। कहा, "यह गुह श्रीराम का स्नेही मित्र है।" भरत तुरंत रथ से उतर पड़े। गुह ने अपना नाम, गांव और जाति बताकर उनको दण्डवत प्रणाम किया।

करत दंडवत देखि तेहि भरत लीन्ह उर लाइ ।
मनहुं लखन सन भेंट भइ प्रेमु न हृदयं समाइ ॥

गुह को दंडवत् करते देख उन्होंने उसे छाती से लगा लिया। उनके हृदय में प्रेम नहीं समाता था। उन्हें लग रहा था मानो



भरत ने मुनि भरद्वाज को दण्डवत प्रणाम किया

वह लक्ष्मण से भेंट कर रहे हों। जिस निषाद को छोटी जाति का मानकर लोग उससे घृणा करते हैं, भरत ने उसीको छाती से लगा लिया, चूंकि वह राम का भक्त था। उसे राम ने भी तो गले लगाया था।

इस प्रकार भेंट करने के बाद गुह का संदेह दूर होगया। सब लोगों ने गंगा-स्नान किया और रात को भरत ने उसी जगह विश्राम किया, जहां राम ठहरे थे। सवेरे उन्होंने गंगा को पार किया और सबके साथ आगे बढ़े। गुह उनको वे सब स्थान दिखाता जा रहा था, जहां-जहां राम ठहरे थे। उन स्थानों को देखते हुए और उनकी बातें सुनते हुए वे सब लोग प्रयाग पहुंच

गये। यहां उन्होंने त्रिवेणी में स्नान किया। इसके बाद भरद्वाज मुनि के आश्रम में पहुंचे। भरत ने मुनि भरद्वाज को दण्डवत प्रणाम किया और मुनि उन्हें छाती से लगाकर धीरज बंधाने लगे, "भरत इसमें तुम्हारा कोई दोष नहीं है। यह सब कर्मों की गति है।" दूसरे दिन वे सब लोग यहां से भी आगे बढ़ गये। भरत की अवस्था देखते ही बनती थी। पैरों में जूते नहीं, सिर पर छांया नहीं। राम के दर्शनों को व्याकुल वह आगे बढ़ रहे थे। वह प्रत्येक उस स्थान पर रुकते थे, जहां राम कुछ देर ठहर चुके थे। वे उसी रास्ते से चित्रकूट पहुंच रहे थे, जिस रास्ते से राम गये थे।

: १४ :

लक्ष्मण का कोप

चित्रकूट में राम और सीता रात बीतने से पहले ही जाग गये। रात को सीताजी ने एक ऐसा स्वप्न देखा कि भरतजी नगर-निवासियों के साथ वहां आये हैं। प्रभु राम के बिछुड़ने से उनका शरीर दुःख की आग में जल रहा है। सीताजी ने यह स्वप्न श्रीराम को सुनाया। स्वप्न की बात कहती हुई वह बोलीं, "सब लोग मन में उदासीन, दीन और दुखी हैं। उन्होंने अपनी सासुओं को किसी और ही रूप में देखा है।" इस स्वप्न की बात सुनकर राम की आंखें भर आईं। वह चिंता में पड़ गये और लक्ष्मण से कहने लगे, "भाई, यह स्वप्न तो अच्छा नहीं। ऐसा जान पड़ता है, हम कोई बहुत बुरी खबर सुननेवाले हैं।" इसी

समय भील, कोल और किरातों ने आकर समाचार दिया कि एक बड़ी सेना इधर आ रही है। उत्तर दिशा की ओर देखने पर पता चला कि आकाश धूल से भरा पड़ा है। तभी एक और समाचार मिला कि भरत सेना के साथ आ रहे हैं। यह समाचार पाकर राम चकित रह गये और लक्ष्मण क्रोध से भर उठे। वह समझने लगे कि अवश्य यह भरत की ही कोई चाल है।

कहने लगे, "अपने मन में बुरे विचार बनाकर बहुत-से आदमियों को साथ लेकर निष्कंटक राज करने के लिए ये लोग यहां आ रहे हैं। करोड़ों तरह की कुटिलता रचकर दोनों भाई बड़ी भारी सेना लेकर आ रहे हैं। यदि भरत का मन साफ होता तो इतनी बड़ी सेना लेकर क्यों आता? इसमें भरत का दोष नहीं है। उसे राज्य का मद पागल बना रहा है। लेकिन मैं भी क्षत्रिय हूं। मैंने भी रघुकुल में जन्म लिया है। इसपर मैं राम का सेवक हूं। देखता हूं, भरत में कितना बल है!"

आजु राम सेवक जसु लेऊं।
भरतहिं समर सिखावन देऊं॥
राम निरादर कर फलु पाई।
सोवहुं समर सेज दोउ भाई॥

मैं आज राम का सेवक होने का यश लूंगा। आज मैं भरत को युद्ध-भूमि में शिक्षा दूंगा। राम का निरादर करने का फल चखाऊंगा। वे दोनों भाई आज युद्ध-भूमि में सोयेंगे।" लक्ष्मण क्रोध में यहांतक कह उठे—

जौ सहाय कर संकरु आई।
तौ मारउं रन रामदोहाई॥

—अगर शंकर भगवान भी आकर इनका सहयोग करेंगे तो भी मैं इनको युद्ध में मार गिराऊंगा। मुझे राम की सौगंध है।

इतने में आकाशवाणी हुई, "जो काम करना चाहिए, वह भली-भांति सोच-समझकर करना चाहिए।" राम ने भी यही कहा। बोले, "हे लक्ष्मण, भरत-जैसा उत्तम मनुष्य न तो सुना गया है और न देखा गया है। भरत को राज-मद नहीं हो सकता।"

भरतहि होइ न राजमदु बिधि हरि हर पद पाइ।
कबहुं कि कांजी सीकरनि छीरसिंधु बिनसाइ॥

अयोध्या का राज तो क्या, अगर ब्रह्मा, विष्णु, महेश का पद भी उसे मिल जाय तो भी ऐसा नहीं हो सकता। क्या कभी खटाई की बूंदों से क्षीरसागर फट सकता है।

: १५ :

भरत-मिलाप

राम जब लक्ष्मण को इस प्रकार समझा रहे थे तब भरत मंदाकिनी नदी में स्नान करने गये। उन्होंने सब लोगों को नदी के किनारे ठहरा दिया और गुरुजनों की आज्ञा लेकर राम के पास चले। उनके साथ केवल गुह ही था। भरत मन में सोचने लगे कि कुहीं मेरे आने का समाचार पाकर राम चले न जायं। उनका मन शंकाओं से भर रहा था। तभी गुह ने दूर से ही भरत को राम का निवास-स्थान दिखाया। भरत ने राम की उस कुटियो को

प्रणाम किया। फिर दोनों भाई राम के पास पहुंचे। मुनि-मंडली के बीच में सीताजी और रामचंद्रजी ऐसे सुशोभित हो रहे थे, मानो ज्ञान की सभा में साक्षात भक्ति और सच्चिदानंद शरीर धारण करके विराजमान हो रहे हैं। उन्हें देखकर छोटे भाई शत्रुघ्न और सखा निषादराज के साथ उनका मन प्रेम से मग्न हो उठा। वह हर्ष-शोक, सुख-दुख सब भूल गये। 'हे नाथ, रक्षा कीजिये, हे गुसाइँ, रक्षा कीजिये' – ऐसा कहकर पृथ्वी पर गिर पड़े। उन प्रेम-भरे वचनों को सुनकर लक्ष्मण ने भरत को पहचान लिया और प्रेमसहित पृथ्वी पर मस्तक नवाकर राम से कहा—"हे रघुनाथजी, भरतजी प्रणाम कर रहे हैं।"

उठे रामु सुनि प्रेम अधीरा।
कहुं पट कहु निषंग धनु तीरा।।
बरबस लिये उठाइ उर लाये कृपानिधान।
भरत राम की मिलनि लखि बिसरे सबहि अपान।।

यह सुनते ही रघुनाथजी प्रेम में अधीर हो उठे। कहीं वस्त्र, गिरे, कहीं तरकस, कहीं धनुष और कहीं तीर। उन्होंने भरत को बरबस उठाकर हृदय से लगा लिया। भरत-राम-मिलन को देखकर सब अपनी सुधि-बुधि भूल गये। भरतजी से मिलने के बाद राम शत्रुघ्न से मिले। फिर उन्होंने निषाद को गले से लगाया। भरत और शत्रुघ्न ने मुनियों को प्रणाम किया। सीता के पैरों की रज ली और सबने उनको आशीर्वाद दिया। इस अवसर पर गुह ने प्रणाम करके कहा—

नाथ साथ मुनिनाथ के मातु सकल पुरलोग।
सेवक सेनप सचिव सब आये विकल वियोग।।



राम ने भरत को बरबस होकर गले से लगा लिया

—"हे नाथ ! मुनिराज वसिष्ठ के साथ माताएं, अयोध्या के नगर-निवासी, सेवक, सेनापति, मंत्री सब आपके वियोग में व्याकुल होकर आपसे मिलने यहां आये हैं।" गुरु और माताओं के आने का समाचार पाकर राम तुरंत उनसे मिलने को चले। शत्रुघ्न को उन्होंने सीता जी के पास छोड़ दिया। मंदाकिनी के किनारे पहुंचकर राम ने सबसे पहले मुनि वसिष्ठ को प्रणाम

किया। मुनि ने उनको हृदय से लगा लिया। राम ने अपनी माताओं को बहुत दुःखी देखा।

प्रथम राम भेंटी कैकेई।
सरल सुभायं भगति मति भेई।।
पग परि कीन्ह प्रबोधु बहोरी।
कालकरम बिधि सिर धरि खोरी।।

सबसे पहले राम कैकेयी से मिले। अपने सरल स्वभाव और भक्ति से उन्होंने कैकेयी की बुद्धि को तर कर दिया। राम उसके चरणों में गिरे। काल, कर्म और विधाता का दोष बताकर उन्होंने माता को बड़ी तुष्टि दी। उसके बाद उन्होंने गुरुपत्नी को प्रणाम किया और सब ब्राह्मणों की स्त्रियों की वंदना की। फिर दोनों भाई सुमित्राजी की गोद में जा चिपटे। तब कौशल्याजी के चरणों में गिरे। प्रेम के मारे उनके सारे अंग शिथिल हो रहे थे। बड़े स्नेह से माता ने उन्हें हृदय से लगाया। उस मिलन का वर्णन कैसे किया जा सकता है! फिर ब्राह्मण, मंत्री, माताएं और गुरु आदि चुने हुए लोगों को साथ लेकर वह आश्रम की ओर चले। वहां फिर मिलन-समारोह शुरू होगया। सीताजी ने सबसे पहले मुनि वसिष्ठ के पैर छूकर आशीर्वाद पाया, फिर गुरु-पत्नी अरुंधती से मिलीं। उनका आशीर्वाद पाकर जब सीताजी ने अपनी सासुओं को देखा तो एकाएक सहमकर आंखें बंद कर लीं। ऐसा मालूम होता था, मानो राजहंसनियां बधिक के वश में पड़ गई हैं। उन्होंने बहुत धीरज धरकर माताओं के चरण छुए। उस समय पृथ्वी पर करुणा-रस की वर्षा होने लगी। स्नेह में भरकर सासुओं ने उन्हें आशीर्वाद दिया, "तेरा सुहाग बना रहे।" इस मिलन-

समारोह के बाद महर्षि वसिष्ठ ने राजा दशरथ के स्वर्ग सिधारने का समाचार सुनाया। चारों ओर शोक व्याप्त होगया। राम अत्यंत व्याकुल हो उठे। लक्ष्मण, सीता और सब रानियां विलाप करने लगीं। मुनि वसिष्ठ के बहुत धीरज बंधाने पर राम सारे समाज के साथ मंदाकिनी नदी में स्नान करने के लिए गये। दो दिन तक उन्होंने राजा के मरने का शोक मनाया।

नाथ लोग सब निपट दुखारी।
कन्द मूल फल अंबु अहारी॥
सानुज भरत सचिव सब माता।
देखि मोहि पल जिमि युग जाता॥
सब समेत पुर धारिअ पाऊ।
आपु इहां अमरावति राऊ॥

इसके बाद राम ने गुरु वसिष्ठ से विनती की—"हे नाथ, सब लोग यहां दुखी हो रहे हैं। कंद-मूल फल और जल का ही आहार करते हैं। शत्रुघ्न, भरत, माताओं और मंत्रियों को देखकर एक-एक पल युग के समान जान पड़ता है। इसलिए इन सबको लेकर आप अयोध्यापुरी लौट जाइये। आप यहां और राजा स्वर्ग में हैं, नगरी सूनी है।" राम के वचन सुनकर सबको बहुत दुःख हुआ। गुरु बोले—"राम, दो दिन और इन सबको दर्शन कर लेने दो।" राम चुप हो गये।

: १६ :

राम नहीं लौटे

दो दिन तक और वे सब लोग आश्रम के पास वन-पहाड़ियों को देखते रहे। इसके बाद एक दिन सारा समाज जुटा। गुरु वसिष्ठ चाहते थे कि आगे की बात का निश्चय होजाय। उन्होंने समाज पर यह निर्णय छोड़ दिया कि राम के मन की बात को ध्यान में रखते हुए वे अंतिम निश्चय कर लें। वसिष्ठ कहने लगे—

सब कहुं सुखद राम अभिषेकू।
मंगल मोद मूल मग एकू॥
केहि बिधि अवध चलहिं रघुराऊ।
कहहु समुझि सोइ करिअ उपाऊ॥

—"सबकी भलाई इसीमें है कि राम का राज-तिलक हो। लेकिन सोचने की बात यह है कि राम अयोध्या वापस किस तरह जायं। विचार करके आप सब निर्णय करें।"

भरत ने कहा—"हे मुनिश्रेष्ठ, यह सब मेरे ही कारण हुआ है, मैं ही दोषी हूं।" और उन्होंने गुरु वसिष्ठ को ही कोई उपाय बताने को कहा।

गुरु बोले, "हे तात, मैं एक बात कहने में सकुचाता हूं। इसका एक ही मार्ग है और वह यह कि, तुम दोनों भाई वन में रहो और लक्ष्मण सीता के साथ राम लौट जायं।" ये सुंदर वचन सुनकर दोनों भाई बड़े प्रसन्न हुए। भरत बोले—

कानन करउं जनम भरि वासू।
एहि तें अधिक न मोर सुपासू॥

—मैं तो जन्मभर वन में वास करने को तैयार हूं। मेरे लिए इससे बढ़कर कोई सुख नहीं। भरत के ऐसे वचन सुनकर सब लोग बड़े आनंदित हुए। गुरु वसिष्ठ राम को नाना प्रकार से समझाने लगे। बोले, "पहले भरत की विनती सुनलो, फिर उसपर विचार करना। आप साधुमत, लोकमत, राजनीति और वेदों की आज्ञा का निचोड़ निकालकर ही निश्चय कीजिये।" राम ने कहा, "मुझे आपकी सौगंध है और पिताजी के चरणों की दुहाई है। मैं सच कहता हूं कि संसार में भरत-जैसा भाई दूसरा हुआ ही नहीं।"

तब गुरु वसिष्ठ ने भरत से कहा, "तुम संकोच त्यागकर राम से अपने मन की बात कहो।" इसपर भरत बड़ी विनम्रता से सारी बातों का इस प्रकार वर्णन करने लगे कि उनकी बातें सुनकर सब लोग शोक में मग्न होगये। राम ने उन्हें बहुत धीरज बंधाया और कहा कि संकोच त्यागकर जो कुछ कहोगे, मैं वही करूंगा। यह सुनकर सब लोग बड़े प्रसन्न हुए तब भरत ने साहस करके कहा—

स्वारथु नाथ फिरें सब ही का।
कियें रजाइ कोटि बिधि नीका॥
यह स्वारथ परमारथ सारू।
सकल सुकृत फल सुगति सिंगारू॥

—"हे नाथ, आपके लौटने में सबका स्वार्थ है और आपकी आज्ञा-पालन में करोड़ों प्रकार से कल्याण है। यही स्वार्थ और

परमार्थ का सार है। सब पुण्यों का फल और सम्पूर्ण सद्गतियों का श्रृंगार हैं। आप मुझे शत्रुघ्न-सहित वन में भेज दीजिये और स्वयं अयोध्या लौटकर उसको सनाथ कीजिये। यदि आप न जायं तो लक्ष्मण और शत्रुघ्न को लौटा दीजिये, मैं आपके साथ चलूंगा। या हम तीनों भाई वन को चले जाते हैं। आप सीताजी सहित लौट जाइये। अपनी जिम्मेदारी मुझपर छोड़िये। न मैं नीति जानता हूं, न धर्म, मैं तो स्वार्थ की बात कह रहा हूं। दुखी मनुष्य के मन में विवेक नहीं रहता। हे प्रभु, जगत के कल्याण के लिए एक यही उपाय है। आप संकोच त्यागकर जिसे जो आज्ञा देंगे, उसे वह सिर नवाकर स्वीकार करेगा।" भरत के ये पवित्र वचन सुनकर चारों ओर हर्ष छागया, लेकिन राम चुप रहे।



"बेटी, तुमने दोनों कुल पवित्र कर दिये"

तभी राजा जनक के आने का समाचार मिला। उन्हें सब समाचार मिल चुके थे और वह भी भरत के पीछे-पीछे चित्रकूट आ पहुंचे। एक बार फिर वह वन मिलन-समारोह के आनंद और करुणा से भर उठा। बहुत देर तक लोग सुख-दुःख की बातें करते रहे। सीता को तपस्विनी के वेष में देखकर जनकजी को बहुत संतोष हुआ। कहने लगे, "बेटी, तुमने दोनों कुल पवित्र कर दिये।" इस प्रकार कई दिन और बीत गये और तब राम ने सबको लौट जाने को कहा।

एक बार फिर सब लोग इकट्ठे हुए। भरत ने अपने मन की बात कहकर राम से प्रार्थना की, "जो कुछ आप आज्ञा देंगे, मैं वही करूंगा। आज्ञा-पालन के समान श्रेष्ठ स्वामी की और कोई सेवा नहीं है। हे देव, अब वह आज्ञारूपी प्रसाद सेवक को मिल जाय।"

अग्या सम न सुसाहिब सेवा।
सो प्रसादु जन पावै देवा॥

भरत के ऐसे प्रेमभरे वचन सुनकर सब प्रसन्न हुए। राम ने उन्हें हाथ पकड़कर अपने पास बैठा लिया। बोले, "हे तात, बुरा अवसर आनेपर भाई ही सहयोगी होता है। वज्र का आघात भी हाथ से ही रोका जाता है। इसलिए तुम मेरी सहायता करो। तुम अयोध्या लौट जाओ और राज्य को संभाल लो।" यह सुनकर भरत को परम संतोष हुआ। उन्होंने कहा—

अब कृपाल जस आयसु होई।
करौं सीस धरि सादर सोई॥

सो अवलम्ब देव मोहि देई।
अवधि पारु पावौं जेहि सेई॥

—हे कृपालु, अब जैसी आज्ञा हो, उसीको मैं सिर पर धर-कर आदरपूर्वक करूं। परंतु देव, आप मुझे कोई सहारा दें, जिसकी सेवा करके मैं इस अवधि को बिता दूं। यह कहकर उन्होंने चित्र-कूट के पवित्र स्थानों आदि को देखने की आज्ञा मांगी। राम बोले—"अत्रि ऋषि जैसा कहें वैसा करो और निर्भय होकर वन में घूमो।"

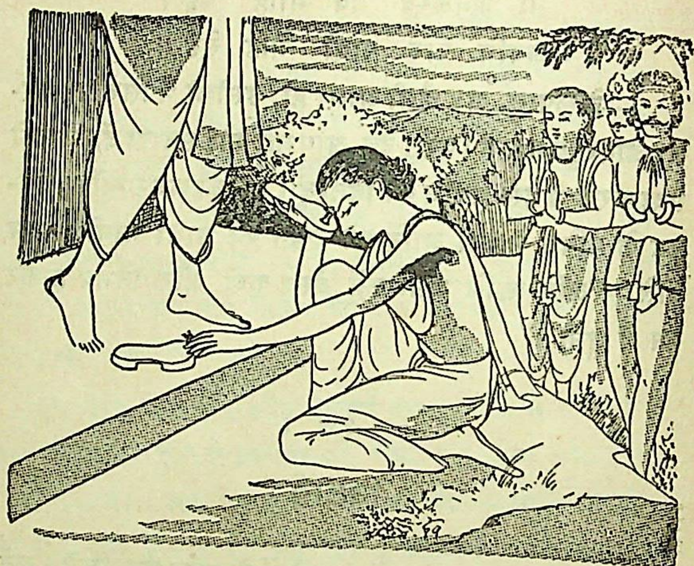
: १७ :

विदाई

भरतजी ने पांच दिन में सब तीर्थों के दर्शन कर लिये। छठे दिन फिर सारा समाज जुटा और राम ने सबको विदा करने का निश्चय किया। राम ने भरत को अपनी चरण-पादुकाएं दे दीं। भरत ने आदरपूर्वक उन्हें मस्तक से लगा लिया।

चरन पीठ करुनानिधान के।
जनु जुग जामिक प्रजा प्रान के॥
सम्पुट भरत सनेह रतन के।
आखर जुग जनु जीव जतन के॥

—करुणानिधान राम की दोनों खड़ाऊं प्रजा के चरणों की रक्षा के लिए मानो दो पहरेदार हैं। भरतजी के प्रेमरूपी रतन के लिए मानो डिब्बा हैं और जीव के साधन के लिए मानो राम-नाम के दो अक्षर हैं।



राम की पादुकाओं को भरत ने सादर मस्तक पर लगा लिया

अब भरतजी ने विदा मांगी। श्रीराम ने उन्हें हृदय से लगा लिया। सब लोग फिर वियोग की बात सोचकर दुखी हो उठे। सब लोग बड़े प्रेम से मिले। तन-मन-वचन तीनों से प्रेम उमड़ पड़ा। राम ने भरत की माता कैकेयी के चरणों की वंदना करके बड़े प्रेम से उनका संकोच मिटाकर उनको विदा किया।

सीता पहले अपने नेहरवालों से मिलकर लौटीं, फिर उन्होंने सासुओं को प्रणाम किया और उनका आशीर्वाद प्राप्त किया। दोनों भाई बार-बार माताओं से मिलने लगे। अंत में गुरु वसिष्ठ और गुरु-पत्नी अरुंधति के चरणों की वंदना करके राम, सीता और लक्ष्मण सहित पर्णकुटी पर लौट आये। उन्होंने सम्मान के साथ

निषादराज को भी विदा कर दिया। वनवासी लोगों को भी लौटा दिया।

उधर भरत ने पहले दिन यमुना को पार किया, दूसरा पड़ाव शृंगवेरपुर में डाला, फिर गोमती में स्नान किया और चौथे दिन अयोध्या जा पहुंचे। चार दिन अयोध्या में रहकर जनकजी लौट गये। नगर के स्त्री-पुरुष गुरु की आज्ञा मानकर अयोध्या में सुखपूर्वक रहने लगे। गुरुजनों के चरणों में सिर नवाकर और प्रभु की चरण-पादुकाओं की आज्ञा पाकर धर्मात्मा भरत भी नंदीग्राम में पर्णकुटी बनाकर रहने लगे। उन्होंने तापस का वेष धारण किया। सब राज-सुख छोड़ दिये। अनासक्त होकर इस प्रकार रहने लगे, जैसे, चम्पा के बाग में भौंरा। वह घर ही में रहकर तप के द्वारा अपने शरीर को कसने लगे।

: १८ :

अनुसूया का उपदेश

भरतजी के लौट जाने के बाद रामचन्द्रजी कुछ समय चित्रकूट में और रहे लेकिन फिर उन्होंने अपने मन में सोचा कि मुझे सब लोग जान गये हैं। अयोध्यावासियों को मेरे यहां रहने का पता चल गया है। जब उनका मन होगा आ सकेंगे। इसलिए अब यहां रहना ठीक नहीं।

यह सोचकर उन्होंने मुनियों से बिदा मांगी और आगे चल पड़े। कुछ दूर पर मुनिवर अत्रि का आश्रम था।

अत्रि के आश्रम जब प्रभु गयऊ।
सुनत महामुनि हरषित भयऊ॥
पुलकित गात अत्रि उठि धाए।
देखि राम आतुर चलि आए॥
करत दण्डवत मुनि उर लाए।
प्रेम बारि द्वौ जन अन्हवाए॥

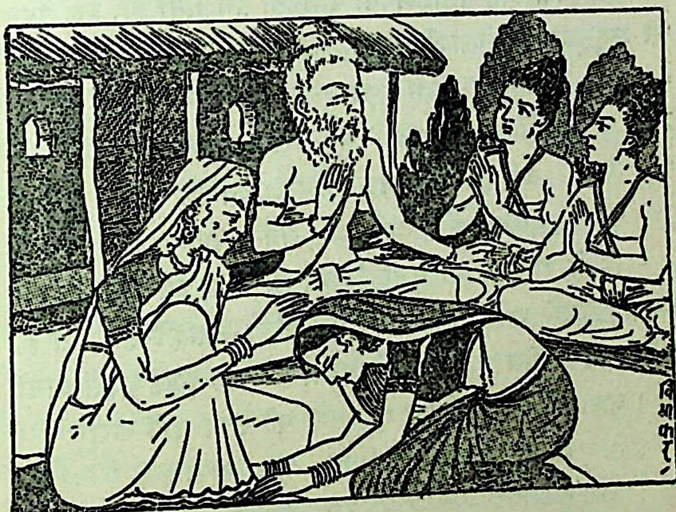
जब श्रीराम वहां पहुंचे तो उनके आने की खबर सुनकर अत्रि मुनि हर्ष से भर उठे। उनका शरीर पुलकित हो आया। श्रीराम से मिलने को वह उठकर दौड़े। उनको दौड़ते देखकर राम भी तेजी से आगे बढ़े और उन्हें दण्डवत करने लगे।

तब दडण्वत करते हुए राम को उठाकर अत्रि मुनि ने हृदय से लगा लिया। उन्होंने प्रेम के आंसुओं के जल से दोनों भाइयों को नहला दिया।

देखि राम छवि नयन जुड़ाने।
सादर निज आश्रम तब आने॥
करि पूजा कहि वचन सुहाए।
दिये मूल फल प्रभु मन भाए॥

श्रीराम की छवि को देखकर अत्रि मुनि के नेत्र शीतल हो गये। वह उनको आदर सहित अपने आश्रम में लाये। उनकी पूजा की। मीठे-मीठे सुन्दर वचन कहे और खाने के लिए मूल तथा फल दिये। वे मूल और फल श्रीराम को बहुत अच्छे लगे। आसन पर विराजमान श्रीराम को देख-देखकर मुनिश्रेष्ठ अत्रि बहुत पुलकित हुए और स्तुति करने लगे, "हे कृपालु! मैं आपको नमस्कार करता हूं। आपका पराक्रम असीम है। आप

सूर्य-वंश के भूषण, महादेवजी का धनुष तोड़नेवाले और तीनों लोकों के स्वामी हैं। आप मुनियों और संतों को आनन्द देने वाले हैं। आप एक अद्भुत प्रभु, इच्छारहित ईश्वर, व्यापक, जगद्गुरु, सनातन और केवल हैं। मैं आपको प्रणाम करता हूं। मुझपर प्रसन्न होइए।"



"अनुसूया के पद गहि सीता"

अनुसुइया के पद गहि सीता।
मिलि बहोरि सुसील विनीता॥
रिषि पतिनी मन सुख अधिकाई।
आसिष देइ निकट बैठाई॥
दिव्य बसन भूषन पहिराए।
जे नित नूतन अमल सुहाए॥

फिर परम शीलवती और विनम्र सीताजी ने अनुसूया के पैर छुए। अनुसूया के मन में इससे बड़ा सुख हुआ। उन्होंने सीता को आसीस देकर अपने पास बैठा लिया और ऐसे वस्त्र और आभूषण दियें जो सदा निर्मल और सुहावने बने रहते हैं।

उन्होंने सीताजी को नारी-धर्म के बारे में सुन्दर उपदेश दिया। जैसे कोई माता अपनी पुत्री को समझाती हो, इस तरह से अनुसूया ने सीताजी को समझाया।

मातु पिता भ्राता हितकारी।
मितप्रद सब सुनु राजकुमारी॥
अमित दान पती वैदेही।
अधम सो नारि जो सेव न तेही॥

—हे राजकुमारी सुनो! माता, पिता और भाई सभी भलाई करने वाले हैं, लेकिन ये एक सीमा तक ही फल देते हैं, और पति असीम फल का देने वाला है। यह बड़ा भारी दानी है। वह स्त्री अधम है जो ऐसे पति की सेवा नहीं करती है।

धीरज धर्म मित्र अरु नारी।
आपद काल परखिअहि चारी॥
वृद्ध रोगबस जड़ धनहीना।
अन्ध बधिर क्रोधी अति दीना॥
ऐसेहु पति कर किए अपमाना।
नारि पाव जमपुर दुख नाना॥
एकइ धर्म एक ब्रत नेमा।
काय वचन मन पतिपद प्रेमा॥

अनुसूया कहने लगीं, "धीरज, धर्म, मित्र और पत्नी इन

चारों की परीक्षा विपत्ति के समय होती है। बूढ़ा, रोगी, मूर्ख, गरीब, अंधा, बहिरा, क्रोधी और बहुत दीन पति का भी अपमान करके स्त्री यमपुर में तरह-तरह के दुख पाती है। स्त्री के लिए यही एक धर्म, यही एक व्रत और यही एक नियम है कि वह शरीर, वचन और मन से अपने पति के चरणों में प्रेम रखे।

अनुसूया ने सीता को बताया कि चार तरह की पतिव्रताएं होती हैं। सबसे उत्तम पतिव्रता वह है जो सपने में भी दूसरे पुरुष का ध्यान नहीं करती। उसके मन में केवल अपना पति ही बसा रहता है। मध्यम श्रेणी की पतिव्रता वह है जो पराये पति को अपने सगे भाई, पिता और बेटे की तरह देखती है, अर्थात् जो बड़ा है उसे पिता के समान, जो समान अवस्था का है, उसे भाई की तरह और छोटे को पुत्र के रूप में देखती है। धर्म और कुल की मर्यादा का ध्यान रखकर जो बची रहती हैं वे स्त्रियां नीची श्रेणी की होती हैं।। और जो स्त्री मौका न मिलने के कारण या डर के कारण पतिव्रता बनी रहती है संसार में उसे अधम कहते हैं। पति को धोखा देनेवाली स्त्री युगों तक नरक में पड़ी रहती है। यह कहकर अनुसूयाजी बोलीं, "हे सीता, यह कथा तो मैंने संसार के भले के लिए कही है। तुम्हें श्रीराम प्राणों के समान प्यारे हैं। तुम्हारा तो नाम लेकर ही संसार की स्त्रियां पतिव्रत-धर्म का पालन करेंगी।"

सुनि जानकी परम सुखु पावा।
सादर तासु चरन सिरु नावा॥
तब मुनि सन कह कृपा निधाना।
आयसु होइ जाउ बन आना॥

संतत मोपर कृपा करेहू ।
सेवक जानि तजेहु जनि नेहू ॥

अनुसूया की बात सुनकर सीताजी को बड़ा सुख मिला । बड़े आदर के साथ उन्होंने अनुसूया के चरणों में सिर नवाया । उसके बाद श्रीराम ने अत्रि मुनि से आगे जाने की आज्ञा मांगी । बोले, "हे मुनि अगर आप आज्ञा दें तो मैं दूसरे वन में जाऊं । मुझपर सदा अपनी कृपा बनाये रखिए । मुझे अपना सेवक समझकर अपना प्रेम न छोड़िए ।"

श्रीराम के ऐसे वचन सुनकर अत्रि मुनि प्रेमपूर्वक बोले, "मैं कैसे कहूं कि आप अब जायं ।" ऐसा कहकर वह धीर मुनि प्रभु को भक्ति भाव से एकटक देखने लगे । उनके नेत्रों से जल बहने लगा । शरीर पुलक उठा । तब देवता, मनुष्य और मुनियों के स्वामी श्रीराम मुनि अत्रि के कमलरूपी चरणों में सिर नवाकर आगे वन को चले ।

मुनि पद कमल नाइ करि सीसा ।
चले बनहि सुर नर मुनि ईसा ॥
आगे राम अनुज मुनि पाछें ।
मुनि वर वेष बने अति काछें ॥
उभय बीच श्री सोहइ कैसी ।
ब्रह्म जीव विच माया जैसी ॥
सरिता बन गिरि अवघट घाटा ।
पति पहिचानि देहिं बर बाटा ॥
जहं जहं जाहि देव रघुराया ।
करहिं मेघ तहं तहं नभ छाया ॥

—आगे राम और पीछे लक्ष्मणजी हैं। दोनों मुनियों के जैसा सुंदर वेष बनाए हुए हैं। इन दोनों के बीच में सीताजी इस तरह लग रही हैं जैसे ब्रह्म और जीव के बीच में माया हो।

—नदी, बन, पहाड़ और भारी-भारी घाटियां सभी अपने स्वामी श्रीराम को पहचानकर सुंदर रास्ता दे देते हैं। जहां-जहां श्रीराम जाते हैं, वहां,वहां बादल आकाश में छाया करते जाते हैं।

: १६ :

राम की प्रतिज्ञा

इस प्रकार जाते हुए रास्ते में विरोध नाम का राक्षस मिला। श्रीराम ने उसे तुरंत मार डाला और आगे बढ़ गए। कुछ देर बाद वे शरभंगजी के आश्रम में पहुंच गये। उनके दर्शन पाकर ऋषि बड़े प्रसन्न हुए। वह बड़े योगी थे और उनकी ही राह देख रहे थे। उन्होंने कहा, "आपने दीन जानकर मुझपर कृपा की है। यह आपका अहसान नहीं है। आपने अपने प्रण की रक्षा की है। अब आप आ गये हैं तो कृपा कर तबतक ठहरिए जबतक मैं शरीर त्याग कर आपमें समा न जाऊं।" इतना कहकर मुनि शरभंग चिता पर जा बैठे और योग-ध्यान में मग्न हो गए। उन्होंने योग की आग में अपने शरीर को जला दिया और इस तरह बैकुंठधाम चले गए। उन्होंने अंतिम समय यही इच्छा प्रकट की—

सीता अनुज समेत प्रभु, नील जलद तनु स्याम ।
मम हिय बसहु निरंतर, सगुन रूप श्रीराम ॥

—हे नीलकमल के समान श्यामले शरीरवाले राम, आप सीता और अपने अनुज लक्ष्मण सहित मेरे हृदय में सदा ही निवास कीजिए ।

ऋषि शरभंग के इस प्रकार शरीर छोड़कर परलोक जाने को देखकर उनके आश्रम में रहनेवाले मुनि लोग अपने-अपने



सभी ने शरणागत-रक्षक दयालु राम का जय-जयकार किया

हृदय में बड़े प्रसन्न हुए । वे सब रामचंद्रजी की स्तुति करने लगे । सभीने शरणागत के रक्षक, दयालु राम का जय-जयकार किया ।

रिसि निकाय मुनिवर गति देखी ।
सुखी भयें निज हृदय बिसेखी ॥

अस्तुति करहिं सकल मुनि बृन्दा।
जयति प्रनतहित करुनाकन्दा ॥

—यहां से राम आगे चले। उनके साथ मुनियों की टोली भी थी। रास्ते में एक स्थान पर श्रीरामचन्द्र ने हड्डियों का एक ढेर देखा। उसे देखकर उन्हें बड़ी दया आई। उन्होंने मुनियों से पूछा, "यह कैसे हुआ ?" मुनियों ने राम को बताया कि राक्षसों ने सब मुनियों को खा डाला है। ये हड्डियां उनकी ही हैं।" यह सुनकर श्रीराम को बड़ा दुःख हुआ। उनकी आंखों में आंसू भर आये।

पुनि रघुनाथ चले बन आगे।
मुनिवर-बृन्द बिपुल संग लागे ॥
अस्थि समूह देखि रघुराया।
पूछा मुनिन्ह लागि अति दाया ॥
निसिचर-निकर सकल मुनि खाये।
सुनि रघुनाथ नयन जल छाये ॥

मुनियों ने श्रीराम को वन के वे सब स्थान दिखाये जहां पर राक्षसों ने उनके दूसरे साथियों को मार डाला था और उनकी हड्डियां वहांपर पड़ी थीं। राम को यह विश्वास हो गया कि मुनियों के साथ राक्षसों ने बड़ा अत्याचार किया है। ऐसी दशा में राम ने उन मुनियों को सांत्वना दी।

निसिचरहीन करउं महि भुज उठाइ पन कीन्ह।
सकल मुनिन्ह के आश्रमन्हि जाइ जाइ सुख दीन्ह ॥

श्रीराम ने भुजा उठाकर प्रतिज्ञा की कि मैं इस भूमि को

बिना राक्षसों की करके छोड़ूंगा। उन्होंने वन के सब मुनियों को उनके आश्रम में जा-जाकर सुख पहुंचाया।

: २० :

मुनि अगस्त से भेंट

अगस्त मुनि के शिष्य सुतीक्षण की राम में बड़ी प्रीति थी। उनके आगमन का समाचार पाकर वह दौड़े हुए आये। प्रेम के कारण उन्हें कुछ भी ज्ञान नहीं रहा था। वह कभी पीछे घूम जाते, फिर आगे चलने लगते। कभी प्रभु के गुण गा-गाकर नाचने लगते।

अबिरल प्रेम भगति मुनि पाई।
प्रभु देखै तरुओट लुकाई॥
अतिसय प्रीति देखि रघुबीरा।
प्रगटे हृदय हरन मन पीरा॥

—मुनि ने राम की महान भक्ति पाली। श्रीराम एक पेड़ के पीछे खड़े होकर मुनि की भक्ति को देखने लगे। मुनि की अपार भक्ति को देखकर रामचंद्रजी, जो संसार के दुखों का नाश करनेवाले हैं, मुनि के हृदय में प्रगट हुए। दर्शन पाकर मुनि रास्ते में अचल होकर बैठ गये। राम ने उन्हें बहुत जगाया पर वह नहीं जगे। फिर राम चतुर्भुज रूप में प्रगट हुए, तब मुनि व्याकुल होकर उठे। प्रेम से गद्गद् होकर मुनि ने राम के दर्शन किए। फिर स्तुति करने लगे।

होइहहिं सुफल आजु मम लोचन ।
देखि बदन पंकज भव मोचन ॥
निर्भय प्रेम मगन मुनि ग्यानी ।
कहि न जाइ सो दशा भवानी ॥

मुनि सुतीक्षण कमलरूपी मुखवाले राम का दर्शन करके कहने लगे, "मेरे नेत्र आज सुफल हो गये, जो मैंने राम के दर्शन कर लिये ।"

उस समय की मुनि सुतीक्षण की भक्ति और उनके प्रेम का वर्णन नहीं किया जा सकता, क्योंकि राम के प्रेम में अपने-आपको लीन कर दिया था । शिवजी पार्वती से कहते हैं कि मुनि की इस दशा का वर्णन नहीं किया जा सकता ।

मुनि सुतीक्षण की अपार भक्ति से प्रसन्न होकर राम ने कहा, "हे मुनि, मैं आपकी भक्ति से बड़ा प्रसन्न हुआ । आप वर मांगिए, मैं आपको दूंगा ।"

तुम्हहिं नीक लागै रघुराई ।
सो मोहि देहु दास सुखदाई ॥
अबिरल भगति बिरति बिग्याना ।
होहु सकल-गुन-ग्यान निधाना ॥
प्रभु जो दीन्ह सो वर मैं पावा ।
अब सो देहु मोहि जो भावा ॥

मुनि सुतीक्षण ने राम के प्रेम में भरकर कहा, "हे राम ! आपको जो अच्छा लगे वह दीजिए । मुझे ऐसा वरदान दो जो मेरे लिए सुखदाई हो ।"

राम ने मुनि से कहा, "तुम अटूट भक्ति, वैराग्य में लीन रहो ।

तुम ज्ञानी हो जाओ और गुणों से भरपूर रहो ।" इसपर मुनि सुतीक्ष्ण कहने लगे, "प्रभु ने जो वर मुझे दिया, वह मैंने पा लिया, परंतु अब वह वर देने की कृपा करें जो मेरी इच्छा हो ।"

अनुज जानकी सहित प्रभु, चाप बान धर राम ।
मम हिय गगन इन्दुइव, बसहु सदा निस्काम ॥

मुनि ने कहा, हे नाथ, "मुझे आपकी भक्ति के सिवाय कुछ नहीं चाहिए । आप सीताजी और लक्ष्मणजी सहित मेरे हृदय में बसे रहिए । यही एक वरदान है जो मैं चाहता हूं ।"

राम ने कहा, "ऐसा ही होगा ।" इतना कहकर श्रीराम अगस्त मुनि के आश्रम की ओर चले ।

बहुत दिवस गुर दरसनु पाए ।
भए मोहि एहि आश्रम आए ॥
अब प्रभु संग जाउँ गुर पाहीं ।
तुम्ह कहं नाथ निहोरा नाहीं ॥
देखि कृपानिधि मुनि चतुराई ।
लिये संग बिहंसे दोउ भाई ॥

मुनि सुतीक्षण कहने लगे, "मुझे गुरु के दर्शन किये बहुत दिन हो गये । मैं इस आश्रम में बहुत दिनों से आया हुआ हूं । अब मैं आपके साथ गुरु के पास जाना चाहता हूं । इसमें हे नाथ ! आपके साथ मैं कोई अहसान नहीं कर रहा हूं ।" मुनि की चतुराई को देखकर कृपा के सागर श्रीराम ने उनको साथ ले लिया । दोनों भाई मुनि की चतुराई पर हंसने लगे ।

थोड़ी ही देर में सुतीक्ष्ण श्रीराम, लक्ष्मण और सीता को साथ लिये अपने गुरु अगस्त मुनि के आश्रम में पहुंच गये । सबसे

आगे जाकर तुरंत सुतीक्षण ने गुरुजी को राम के पधारने का समाचार सुनाया ।

नाथ कोसलाधीस कुमारा ।
आए मिलन जगत आधारा ॥
राम अनुज समेत बैदेही ।
निसी दिनु देव जपतहहु जेही ॥

सुतीक्षण कहने लगे, "नाथ ! अयोध्या के राजा दशरथ के कुमार और संसार भर के सहारे श्रीराम अपने छोटे भाई लक्ष्मण और सीताजी के साथ आये हैं । आप रात-दिन उनको जपते रहते हैं ।"

सुनत अगस्ति पुलकि उठि धाए ।
हरि विलोकि लोचन जल छाए ॥
मुनि पद कमल परे दोउ भाई ।
रिषि अति प्रीति लिए उर लाई ॥

—अगस्त मुनि इस समाचार को सुनकर तुरंत उठकर दौड़े । भगवान राम को देखकर वह बड़े प्रसन्न हुए । उनकी आंखों से प्रेम का जल बहने लगा । दोनों भाई मुनि के चरण कमलों पर गिर पड़े । उन्होंने दोनों भाइयों को बड़े प्रेम से गले लगा लिया । मुनि ने उनको आश्रम में लाकर आसन पर बिठाया । फिर बहुत प्रकार से उनकी पूजा की ।

अगस्त मुनि के आश्रम में और भी बहुत-से मुनि आ गये थे । वे सब राम का दर्शन पाकर बड़े प्रसन्न हुए ।

जहं लगि रहे अपर मुनि वृन्दा ।
हरषे सबु बिलोकि सुखकन्दा ॥

रामचन्द्रजी ने अगस्त मुनि से कहा, "हे मुनिराज ! आप जानते ही हैं कि मैं यहां किसलिए आया हूं ? आपसे कुछ छिपा नहीं है।"

अब सो मन्त्र देहु प्रभु मोहि।
जेहि प्रकार मारौं मुनि-द्रोही ॥



अगस्त के आश्रम में

—श्रीराम कहने लगे, "हे मुनिराज ! अब आप वह सलाह दीजिए जिससे मैं मुनियों पर अत्याचार करने वाले राक्षसों को मार सकूं।"

मुनि मुसकाने सुनि प्रभु बानी।
पूछेहु नाथ मोहि का जानी ॥
तुम्हरेइं भजन प्रभाव अघारी।
जानउं महिमा कछुक तुम्हारी ॥

अगस्त मुनि रामचन्द्रजी की बात को सुनकर मुस्कराए और पूछने लगे, "हे नाथ, आपने मुझे क्या समझकर यह बात पूछी है ? हे पाप के नाश करनेवाले प्रभो, मैं तो आपके ही भजन के प्रभाव से आपकी कुछ महिमा जानता हूं।"

ते तुम्ह सकल लोकपति साईं।
पूंछेहु मोहि अनुज की नाईं॥
यह वर माँगउ कृपा निकेता।
बसहु हृदय श्री अनुज समेता॥
अविरल भगति विरति सतसंगा।
चरन सरोरुह प्रीति अभंगा॥

अगस्त मुनि कहते हैं, "हे प्रभो, आप तो सारे लोकों के स्वामी हैं और आप मुझसे मनुष्य की तरह पूछ रहे हैं ? हे कृपा के सागर, मैं तो आपसे यही वरदान मांगता हूं कि आप सीताजी और छोटे भाई लक्ष्मण के साथ मेरे हृदय में बसे रहें। मुझे प्रगाढ़ भक्ति, वैराग्य, सत्संग और आपके चरण कमलों में अटूट प्रेम प्राप्त हो।"

इस प्रकार अगस्त मुनि ने श्रीराम के लिए अपार प्रेम प्रकट किया। उन्होंने अपने आश्रम से आगे जाने का स्थान भी उनको बताया।

है प्रभु परम मनोहर ठाऊं।
पावन पंचवटी तेहि नाऊं॥
दंडक वन पुनीत प्रभु करहू।
उग्र साप मुनिवर कर हरहू॥

अगस्तजी ने कहा, "हे प्रभो, एक बड़ा सुन्दर पवित्र स्थान

है जिसका नाम पंचवटी है। आप दंडक वन को पवित्र कीजिए और मुनि गौतम के कठोर शाप को दूर कीजिए।"

चले राम तब आयसु पाई।
तुरतहि पंचवटी नियराई॥
दिव्य लता द्रुम प्रभु मन भाये।
निरखि राम ते भयउ सुहाये॥
लषन राम सिय चरन निहारी।
कानन अघ गा भा सुखकारी॥

—अगस्त मुनि की आज्ञा पाकर श्रीराम पंचवटी की ओर चल दिए। शीघ्र ही वे पंचवटी के निकट पहुंच गये। राम के उस वन में पहुंचने पर वहां की लताएं, फूल, पत्तियां सभी शोभायमान होगये। राम, लक्ष्मण और सीता के चरण पड़ने से वह बन बड़ा ही सुख देने वाला होगया। वहां उनकी गृद्धराज जटायु से भेंट हुई। उनसे प्रेमपूर्वक बातें करके श्रीराम गोदावरी के समीप पत्तों की कुटी बनाकर रहने लगे।

जब तें राम कीन्ह तहं बासा।
सुखी भए मुनि बीती त्रासा॥
गिरि बन नदी ताल छवि छाए।
दिन दिन प्रति अति होहिं सुहाए॥

जिस दिन से रामचंद्रजी ने पंचवटी में निवास किया उसी दिन से मुनियों का सब दुःख दूर हो गया और वे बड़े सुखी हुए। पहाड़, वन, नदी, और तालाब शोभायमान हो उठे। उनमें दिन-दिन और सुन्दरता आने लगी। पशु-पक्षी भी बड़े आनंदित हुए। वहां रहते हुए एक दिन लक्ष्मण ने राम से ज्ञान, वैराग्य,

भक्ति, ईश्वर और जीवन के बारे में प्रश्न किये। श्रीराम ने उनका बहुत प्रकार से समाधान किया। इस समाधान से लक्ष्मण को बहुत सुख पहुंचा।



पंचवटी में वास

यहां राम ने लक्ष्मण को यह भी बताया कि संसार में दुष्ट और साधु दोनों प्रकृति के मनुष्य जन्म लेते हैं। जिनका मन पवित्र है, जो ज्ञानी हैं और भगवान की भक्ति में लगे रहते हैं वे संतजन हैं।

इस अवसर पर राम ने लक्ष्मण को यह भी समझाया कि माया, ईश्वर और अपने-आपको जो नहीं जान पाता, वह जीव कहलाता है। बंधन और मोक्ष का देने वाला और माया में लिप्त न होनेवाला केवल एक ईश्वर ही है।

माया ईस न आपु कहं, जान कहिय सो जीव।
बन्ध मोच्छ प्रद सर्वपर, माया प्रेरक सीव॥

राम ने लक्ष्मण को भक्ति की महिमा बताते हुए कहा, "भक्ति ही एक ऐसा सुगम मार्ग है जिसके द्वारा मनुष्य मुझको पा सकता है।" राम कहने लगे कि भक्ति पाने के लिए ब्राह्मणों के चरणों में अगाध प्रेम होना चाहिए। प्रत्येक मनुष्य को वेदों के अनुसार अपने-अपने कर्म को करते रहना चाहिए।

भगति कै साधन कहेऊं बखानी।
सुगम पंथ मोहिं पावहि प्रानी॥
प्रथमहिं बिप्र चरन प्रति प्रीती।
निज-निज कर्म निरत श्रुति रीती॥

राम किसके बस में रहते हैं, इसका बखान करते हुए राम ने अपने भाई लक्ष्मण को बताया कि संतों के कमलरूपी चरणों में जिनका अत्यंत प्रेम हो, जो मन, वचन और कर्म से राम की आराधना करते हों, "जो गुरु, माता, पिता, भाई, पति और देवता सबकुछ मुझे समझते हों, वे मुझे पा सकते हैं।"

संत चरन-पंकज अति प्रेमा।
मन-क्रम-बचन भजन दृढ़ नेमा॥
गुरु पितु मातु बन्धु पति देवा।
सब मोहिं कहं जानै दृढ़ सेवा॥

: २१ :

शर्पणखा का प्रपंच

राम, लक्ष्मण और सीता के पंचवटी में बहुत-से दिन इसी प्रकार की चर्चा में बीत गये। उनको वहां किसी प्रकार का कोई

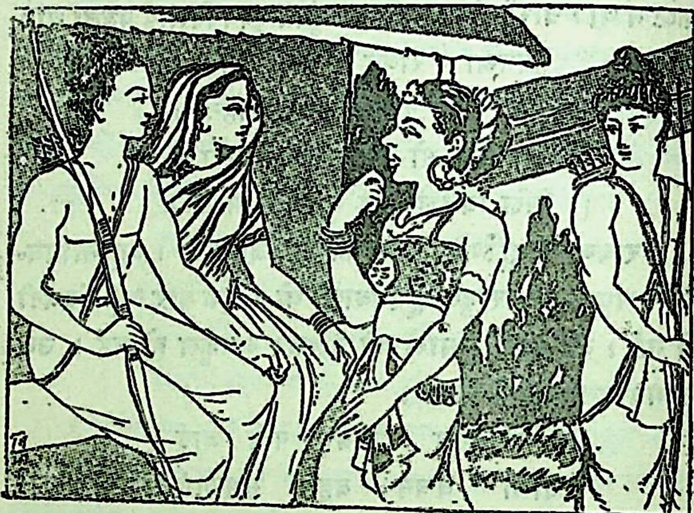
कष्ट न था। चारों ओर प्रकृति का सुंदर दृश्य दिखाई पड़ता था।

सूपनखा रावन कै बहिनी।
दुष्ट हृदय दारुन जसि अहिनी।।
पंचवटी सो गइ एक बारा।
देखि बिकल भई जुगल कुमारा।।

रावण की शूर्पणखा नाम की एक बहन थी। वह नागिन-जैसी भयानक और दुष्ट हृदयवाली थी। एक बार वह पंचवटी में गई। वह दोनों कुमारों को देखकर व्याकुल हो गई। उसे कामवासना सताने लगी।

रुचिर रूप धरि प्रभु पहिं जाई।
बोली वचन बहुत मुसुकाई।।
तुम्ह सम पुरुष न मोइ सम नारी।
यह संजोग विधि रचा विचारी।।
मम अनुरूप पुरुष जग नाहीं।
देखउं खोजि शोक तिहु नाहीं।।
तातें अब लगि रहिउं कुमारी।
मतु माना कछु तुम्हहि निहारी।।

शूर्पणखा बहुत सुंदर रूप बनाकर रामचंद्रजी के पास आई। वह खूब हँस-हँसकर कहने लगी, "तुम्हारे जैसा तो दूसरा पुरुष नहीं है और मेरे जैसी दूसरी स्त्री नहीं है। विधाता ने यह जोड़ा बहुत सोच-विचारकर रचा है। मेरे लायक पुरुष संसार भर में नहीं है। मैंने तीनों लोकों में ढूंढ़कर देखा है। इसी कारण मैं अबतक कुमारी हूं। अब तुम्हें देखकर मेरे मन को कुछ तसल्ली हुई है।"



तुम्ह सम पुरुष न मोइ सम नारी

सीतहि चितइ कही प्रभु बाता।
अहइ कुमार मोर लघु भ्राता॥
गइ लक्षिमन रिपुभगिनी जानी।
प्रभु विलोकि बोले प्रभु बानी॥

श्रीराम ने सीता की ओर देखकर कहा, "मेरा छोटा भाई कुमार है।" इतना सुनकर शूर्पणखा लक्ष्मणजी के पास गई। लक्ष्मण ने उसे दुश्मन की बहन समझते हुए, श्रीराम की ओर देखकर मीठे शब्दों में कहा—

सुन्दरि सुनु मैं उन्ह कर दासा।
पराधीन नहिं तोर सुपासा॥
प्रभु समर्थ कोसलपुर राजा।
जो कछु करहिं उनहिं सब छाजा॥

"सुंदरी सुनो, मैं उनका दास हूं। मैं पराधीन हूं। इसलिए मेरे साथ तुम्हारा भला नहीं होगा। प्रभु सामर्थ्यवान हैं। वह अयोध्या के राजा हैं। वह जो कुछ करेंगे उनको सब फबता है।"

सेवक सुख चह मान भिखारी।
व्यसनी धन सुभ गति विभिचारी॥
लोभी जसु चह चार गुमानी।
नभ दुहि दूध चहत ए प्रानी॥

"सेवक सुख चाहे, भिखारी आदर चाहे, बुरे कामों के करनेवाला धन चाहे, दुराचारी अच्छी गति चाहे, लोभी यश चाहे, दूत घमंडी होकर अपने स्वामी की भलाई चाहे तो समझना चाहिए कि ये सब आसमान को दुह कर दूध लेना चाहते हैं।"

पुनि फिरि राम निकट सो आई।
प्रभु लछिमन पहिं बहुरि पठाई॥
लछिमन कहा तोहि सो बरई।
जो तृन तोरि लाज परि हरई॥

लक्ष्मणजी के पास से लौटकर शूर्पणखा रामचंद्रजी के पास आई। राम ने उसे फिर लक्ष्मण के पास भेजा दिया। अब की बार लक्ष्मण ने कहा, "तुमसे तो वही विवाह कर सकता है जो शर्म को तिनके की तरह तोड़कर तज देगा।"

तब खिसिआनि राम पहिं गई।
रूप भयंकर प्रगटत भई॥
सीतहिं सभय देखि रघुराई।
कहा अनुज सन सयन बुझाई॥

लक्ष्मण की बात सुनकर शूर्पणखा खिसियाकर राम के पास

गई। अब उसने अपना डरावना रूप दिखाया। सीता को डरी हुई देखकर श्रीराम ने लक्ष्मण को इशारे से समझा दिया।

लक्षिमन अति लाघव सो, नाक कान बिनु कीन्हि।
ताके कर रावन कहें मनो चुनौति दीन्हि॥

लक्ष्मण ने बड़ी फुर्ती से शूर्पणखा को बिना नाक और कान के कर दिया। मानो ऐसा करके उन्होंने उसके हाथों रावण को चुनौती दे डाली।

नाक-कान कट जाने पर शूर्पणखा बड़ी डरावनी हो गई। उसके शरीर से खून ऐसे बहने लगा, जैसे काले पहाड़ से गेरू की लाल धारा बहती हो।

: २२ :

खर-दूषण-वध

शूर्पणखा विलाप करती हुई अपने भाई खर और दूषण के पास गई। वह कहने लगी, "हे भाई! तुम्हारी वीरता को धिक्कार है, तुम्हारे बल को धिक्कार है।"

खर दूषन पहिं गई बिलपाता।
धिग धिग तव पौरुष बल भ्राता॥

उन्होंने सारी बात पूछी। शूर्पणखा ने सब बातें समझाकर कह दीं। उसकी बातें सुनकर राक्षसों ने सेना तैयार की। शूर्पणखा को आगे करके वे तरह-तरह की सवारियां पर चढ़कर लड़ने को चल दिये।

कोउ कह जियत धरहु दोउ भाई।
धरि, मारहु तिय लेहु छुड़ाई॥
धूरि पूरि नभ-मंडल रहा।
राम बुलाइ अनुज सन कहा॥

कोई कहने लगा कि दोनों भाइयों को जीता ही पकड़ लो। कोई कह रहा था कि पकड़कर मार डालो और स्त्री छीन लो। उनके चलने से सारा आकाश धूल से भर गया। राम यह देखकर समझ गये कि राक्षस बड़ी संख्या में आ रहे हैं। वह सचेत हो गये। उन्होंने लक्ष्मण से कहा—

लै जानकिहि जाहु गिरिकंदर।
आवा निसिचर कटकु भयंकर॥
रहेहु सजग मुनि प्रभु कै बानी।
चले सहित सिय सर धनु पानी॥

"जानकी को लेकर तुम पहाड़ की गुफा में चले जाओ। राक्षसों की बड़ी भारी सेना इकट्ठी होकर आ गई है। तुम सावधान रहना।" रामचंद्रजी की आज्ञा पाकर लक्ष्मण सीता-सहित हाथ में धनुष-बाण लिये वहां से चल दिये।

देखि राम रिपुदल चलि आवा।
बिहँसि कठिन कोदंड चढ़ावा॥

राम धनुष-बाण लेकर राक्षसों की सेना का मुकाबला करने को तैयार हो गये। धनुष चढ़ाकर उन्होंने जटाजूट कसे। कमर में तरकस, विशाल भुजाओं में धनुष-बाण लेकर राम राक्षसों को ऐसे देखने लगे जैसे सिंह मतवाले हाथियों के समूह को देखता है। "पकड़ो, पकड़ो" पुकारते हुए राक्षसों

ने राम को चारों ओर से घेर लिया। लेकिन श्रीराम के रूप को देखकर वे चकित रह गये। उनके ऊपर वे एक भी हथियार न चला सके। खर-दूषण ने अपने मंत्री को बुलाकर कहा—

सचिव बोलि बोले खर दूषन।
यह कोउ नृप बालक नर भूषन।।

यह बालक तो मनुष्यों में श्रेष्ठ हैं और किसी राजा के बालक हैं।

उन्होंने कहा, "हमने बहुत-से नाग, असुर, देवता, मनुष्यादि देखे हैं, जीते हैं, मारे हैं, पर अब तक इतना सुन्दर रूप कभी देखा ही नहीं।"

जद्यपि भगिनी कीन्हि कुरूपा।
बध लायक नहिं पुरुष अनूपा।।
देहु तुरत निज नारि दुराई।
जीअत भवन जाहु दोउ भाई।।
मोर कहा तुम्ह ताहि सुनावहु।
तासु बचन सुनि आतुर आवहु।।

खर-दूषण कहने लगे, "यद्यपि इन्होंने हमारी बहन को कुरूप कर दिया है, लेकिन ये सुन्दर पुरुष मारने लायक नहीं।" वे अपने दूतों से कहने लगे, "तुम हमारी ओर से उनको जाकर कहो कि वे छिपाई हुई स्त्री हमें दे दें और जीते-जी दोनों भाई अपने घर लौट जायं। इस बात का वे जो उत्तर दें उसे सुनकर तुम जल्दी से लौट आओ।"

खर-दूषण के दूत राम के पास गये और उन्होंने सारी बातें उनसे कहीं। श्रीराम उनकी बातों को सुनकर मुस्कराने

लगे और बोले—

हम छत्री मृगया बन करहीं।
तुम्हं से खल मृग खोजत फिरही॥
रिपु बलवंत देखि नहिं डरहीं।
एक बार कालहु सन लरहीं॥
जद्यपि मनुज दनुज कुल घालक।
मुनि पालक खल सालक बालक॥
जौं न होइ बल घर फिरि जाहू।
समर विमुख मैं हतउं न काहू॥

--हम क्षत्रिय हैं। हम तो वन में शिकार करते हैं और तुम्हारे जैसे दुष्टों की तलाश में फिरते हैं। हम दुश्मन को बलवान देखकर नहीं डरते, चाहे एक बार मौत ही लड़ने के लिए क्यों न आजाय। यद्यपि हम मनुष्य हैं परंतु राक्षसों का नाश करनेवाले और मुनियों की रक्षा करनेवाले हैं। हम बालक हैं परंतु दुष्टों को दंड देनेवाले हैं, यदि शक्ति न हो तो घर लौट जाओ। रण में पीठ दिखानेवाले किसीको हम नहीं मारते।

दूतन्ह जाइ तुरत सब कहेऊ।
सुनि खर-दूषन उर अति दहेऊ॥

दूत वापस लौट आये और श्रीराम की सारी बातें उन्होंने खर-दूषण से कह दीं। वे क्रोध में भर उठे, उनका कलेजा जलने लगा। उन्होंने श्रीराम पर धावा बोल दिया। कहा, "पकड़ लो।" और भयानक राक्षस योद्धा तरह-तरह के अस्त्र लेकर दौड़े। अकेले राम उस राक्षस-सेना से भिड़ गये। उन्होंने पहले धनुष का टंकार किया, जिसे सुनकर राक्षस बहरे और व्याकुल

हो गये। फिर क्रुद्ध होकर उन्होंने जोर का आक्रमण किया। राम ने तुरंत उनके हथियार काट डाले। फिर फुफकारते हुए सर्प के समान बाण छोड़ने लगे। राक्षस कट-कटकर गिरने लगे। कहीं हाथ, कहीं पैर, कहीं छाती, कहीं सिर। आकाश में सिर-ही-सिर और भुजाएं-ही-भुजाएं उड़ने लगीं। बड़ा भयानक दृश्य था। योद्धा गिरते, फिर उठकर लड़ते, माया रचते। श्रीराम ने जब यह देखा कि राक्षस लोग बड़ी तादाद में हैं और उनके मरने में बहुत देर लगेगी तो उन्होंने ऐसी माया रची कि राक्षस एक दूसरे को राम-रूप देखने लगे। इस तरह से वे आपस में ही मर-कट गये। राम ने खर और दूषण दोनों को अपने तेज बाणों से मार डाला।

हर्षित बर्षहिं सुमन सुर, गाजहिं गगन निसान।
अस्तुति करि करि सुर चले, सोभित बिबिध विमान ॥

राक्षसों को मार डालने की खबर सुनकर मुनि लोग बड़े प्रसन्न हुए। देवताओं ने बड़ा हर्ष मनाया। वे अपने-अपने विमानों में बैठकर अपने-अपने स्थानों को चले गए।

जब रघुनाथ समर रिपु जीते।
सुर नर मुनि सब के भय बीते ॥
तब लछिमन सीतहि लई आए।
प्रभु पद परत हरिष उर लाए ॥

जब राम ने दुश्मनों को लड़ाई में जीत लिया तो देवता, मनुष्य और मुनि सबका डर जाता रहा। लक्ष्मण सीताजी को गुफा से बाहर ले आये और श्रीराम के चरणों में गिर पड़े। राम ने लक्ष्मण को उठाकर गले से लगा लिया। सीताजी तब

श्रीराम के श्याम और कोमल शरीर को बड़े प्रेम से निहारने लगीं। उनकी आँखें अघाती नहीं थीं।

पंचवटी बसि श्री रघुनायक।
करत चरित सुर मुनि सुखदायक॥

रामचंद्रजी सीता के साथ पंचवटी में वास करके ऐसे काम करने लगे कि जिनसे देवताओं और मुनियों को सुख मिले।

: २३ :

रावण के दरबार में

अपने भाई खर और दूषण के मर जाने पर शूर्पणखा बड़ी बेचैन हुई। अब वहां उसकी सुधि लेनेवाला कोई भी न था। ऐसी दशा में वह कुछ भी उपाय न सोच पाती थी। अंत में उसने अपने भाई रावण के पास जाने का विचार किया।

धुआं देखि खर दूषन केरा।
जाइ सूपंनखा रावन प्रेरा॥
बोली बचन क्रोध करि भारी।
देस कोस कै सुरति बिसारी॥
करसि पान सोवति दिनु राती।
सुधि नहिं तव सिर पर आराती॥

खर और दूषण का विध्वंस देखकर शूर्पणखा रावण के पास आई। उसने रावण को भड़काया। वह क्रोध में भरकर कहने लगी, "तूने तो देश और खजाने की सुधि ही भुला दी। तू शराब पीता है और दिन-रात सोता है। तुझे खबर तक नहीं कि दुश्मन

तेरे सिर पर हैं।" वह बोली—"हे रावण ,

संग तें जती कुमंत्र तें राजा।
मान तें ग्यान पान तें लाजा ॥
प्रीति प्रनय विनु मद तें गुनी।
नासहिं बेगि नीति अस सुनी ॥

विषय-संग से संन्यासी, बुरी सलाह से राजा, मन से ज्ञान, मदिरा-पान से लज्जा, नम्रता के बिना प्रीति, और अहंकार से गुणवान शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं। ऐसी नीति मैंने सुनी है।"

सभा मांझ परि ब्याकुल बहु प्रकार कहि रोइ।
तोहि जियत दसकंधर मोरि कि असि गति होइ ॥

शूर्पणखा रावण के दरबार में व्याकुल हो उठी। वह तरह-तरह से रोने लगी, कहने लगी, "हे रावण, तुम्हारे जीते-जी मेरी ऐसी दशा हो ?"

सुनत सभासद उठे अकुलाई।
समुझाई गहि बांह उठाई ॥
कह लंकेस कहसि निज बाता।
केइं तव नासा कान निपाता ॥

शूर्पणखा की बात सुनकर सभासद घबड़ा उठे। उन्होंने शूर्पणखा को बांह पकड़कर उठाया और उसे समझाया। रावण ने उससे कहा, "तू अपनी बात तो बता कि तेरे नाक और कान किसने काट लिये।"

अवध नृपति दसरथ के जाए।
पुरुष सिंघ बन खेलन आए ॥

समुझि परी मोहि उन्ह कै करनी ।
रहित निसाचर करिहिं धरनी ॥

शूर्पणखा कहने लगी, "अवध के राजा दशरथ के पुत्र, जो पुरुषों में सिंह की तरह हैं, बन में शिकार खेलने आये हैं । मुझे तो ऐसा जान पड़ा कि वे राक्षसों को मार डालेंगे । उनकी भुजाओं के बल पर मुनि वन में निर्भय होकर घूमने लगे हैं । वे देखने में बालक हैं, लेकिन वैसे काल की तरह हैं । वे दोनों भाई बड़े बलशाली हैं । वे राक्षसों को मारने में लगे हुए हैं ।

सोभाधाम राम अस नामा ।
तिन्हके संग नारि एक स्यामा ॥
रूपरासि विधि नारि संवारी ।
रति सत कोटि तासु बलिहारी ॥
तासु अनुज कांटे श्रुति नासा ।
सुनि नव भगिनि करहि परिहासा ॥

"शोभा के धाम जो हैं, उनका नाम 'राम' है । उनके साथ एक सुंदर स्त्री है । विधाता ने उस स्त्री को ऐसा सुंदर बनाया है कि सौ करोड़ कामदेव की स्त्रियां भी उसपर न्यौछावर हो जायं । उनके छोटे भाई ने मेरे नाक-कान काटे हैं । मैं तेरी बहन हूं । यह बात सुनकर वे मेरी मजाक करने लगे ।"

खर दूषन सुनि लगे पुकारा ।
छन महं सकल कटक उन्ह मारा ॥
खर-दूषन तिसिरा कर घाता ।
सुनि दससीस जरे सब गाता ॥

"तब मैंने खर-दूषण को पुकारा । मेरी पुकार सुनकर वे

सहायता के लिये गये। पर उन्होंने थोड़ी ही देर में सारी सेना को मार डाला। उन्होंने खर, दूषण और त्रिशिरा को भी मार दिया।"

रावण ने जब अपनी बहन की ये बातें सुनीं तो वह क्रोध में भर गया। अपनी बहन को समझाते हुए अपने बल का बखान करने लगा। उसने राम से बदला लेने का निश्चय किया। लेकिन मन चिंताओं से भरा हुआ था।

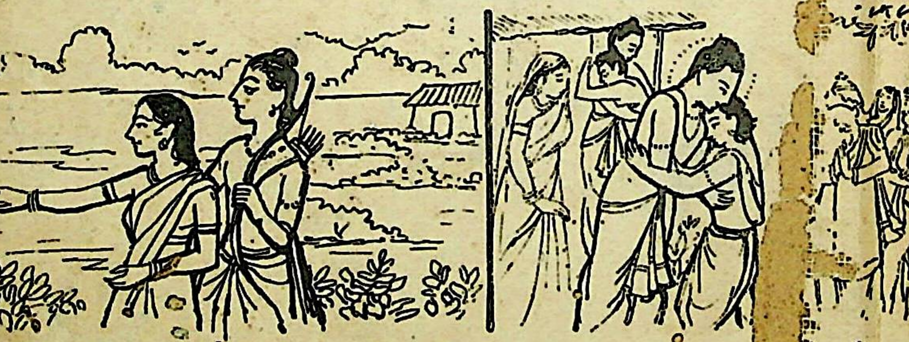
सुर नर असुर नाग खग माहीं।
मोरे अनुचर कहं कोउ नाहीं॥
खर दूषन मोहि सम बलवन्ता।
तिन्हहि को मारइ बिनु भगवंता॥

रावण सोचने लगा—देवता, मनुष्य, राक्षस, नाग और पक्षियों में मेरे नौकर-चाकरों के समान भी कोई नहीं है। खर और दूषण दोनों तो मेरे ही जैसे बलवान थे। भगवान के सिवाय उन्हें कोई मार ही नहीं सकता।

रावण मन-ही-मन कहने लगा कि यदि भगवान ने देवताओं को आनंद देने के लिए अवतार लिया है तो मैं वहां जाकर उनसे जबरदस्ती बैर करूंगा। उन भगवान के बाण लगने से यदि मर गया तो मेरी मुक्ति हो जायगी। इस तरह के और भी विचार रावण के हृदय में उठने लगे। उसे रात भर नींद नहीं आई।

हमारा
रामायण-संबंधी साहित्य

- दशरथ-नंदन श्रीराम
- रामायण कालीन संस्कृति
- रामायण कालीन समाज
- रामकीर्त्ति
- मर्यादा पुरुषोत्तम राम
- बाल राम-कथा
- राम-जन्म
- राम वन-गमन
- सीता-हरण
- लंका-विजय



जब तक हमारी भारत भूमि में गंगा और कावेरी प्रवहमान हैं तब तक सीता-राम की कथा भी आबाल, स्त्री-पुरुष सबमें प्र[illegible] रहेगी, माता की तरह हमारी जनता की रक्षा करती र[illegible]

—च० राजगोपाल[illegible]